दीवान ग्राम के ठीक दक्खिन ओर है और यहां पर सड़क गोल होकर गई है। यह दूसरा चौक ३२६ फीट लम्बा और २१० फीट चौड़ा है। इसके दक्षिण ओर अकबर का दफ्तरख़ाना था और उत्तर ओर उसके रहने के स्थान थे। राजकाज के कार्य्यों में यह अत्यन्त आवश्यक है कि दफ्तर कार्यकर्ता के निकट ही हो। यह दफ्तरख़ाना ४४ फीट लम्बा और २८ फीट चौड़ा है और इसके चारो ओर १८ फ़ीट चौड़ा एक बरामदा चला गया है। इस कोठरी के पूर्व और पश्चिम ओर एक एक और उत्तर ओर तीन द्वार हैं, तथा दक्षिण ओर तीन खिड़कियां हैं। बीचवाली खिड़की में से एक छाया हुआ छज्जा निकला है जिसमें से बैठकर देखने से उस किञ्चित् पहाड़ी देश की शोभा विचित्र देख पड़ती है। इस दफ्तरख़ाने के दक्षिण-पूर्व कोने में एक घुमौवां सीढ़ी है जिसपर होकर छत पर जाने का मार्ग है। पाठकों से हमारा अनुरोध है कि जब कभी उन्हें यहां जाने का अवसर प्राप्त हो तो वे इस स्थान की छत पर चढ़कर समस्त नगर की शोभा देखें। इस भवन की बनावट यद्यपि साधारण है, पर पत्थर पर काम अच्छा किया गया है। एक समय वह था कि यहां पर न जाने कैसे कैसे बहुमूल्य काग़ज़ रक्खे रहते होंगे, और एक समय यह है कि अब वहां नित्यप्रति झाड़ू भी नहीं लगता।

हम कह चुके हैं कि दफ्तरख़ाने के उत्तर ओर अकबर के रहने के स्थान थे जिन्हें अब तक लोग महल ख़ास कहते हैं। कुछ लोगों का यह अनुमान है अकबर ने पहिले पहल इन्हीं स्थानों को बनवाया था। जो हो, दफ्तर ख़ाने के ठीक सामने तो अकबर का ख़ाबगाह है। यह एक छोटी सी कोठरी है जो १४ फीट लम्बी और उतनी ही चौड़ी है। इस कोठरी से जोधाबाई, सुलतानाबेगम, मरीयम आदि के प्रासादों और महलों को जाने के लिये दालानें बनी थीं परन्तु, अब अनेक स्थानों से वे टूट गई हैं। ख़ाबगाह की कोठरी, इसमें कोई सन्देह नहीं है कि, फ़तहपुर-सिक्री के सब स्थानों से उत्तम थी। उसकी बनावट और चित्रकारी अब तक मन को मोहित कर लेती है। इस कोठरी के ठीक पीछे एक और कोठरी है जिसमें ऐसा कहा जाता है कि एक साधू, जिसे अकबर बहुत मानता था, रहता था। परन्तु इसकी बनावट साधारण है। ख़ाबगाह वाली कोठरी किसी समय चित्रकारी से ख़ूब भरी हुई थी, पर अब भी जो कुछ बाकी बच रहा है उसे देख कर यह अनुमान किया जा सकता है कि यहां कैसी कुछ कारीगरी दिखाई गई थी। इसमें स्थान स्थान पर सुन्दर सुनहले अक्षरों में फारसी की शेरें लिखी हुई थीं, जिन में से अब केवल ये पढ़ी गई हैं—

फ़र्शे ऐवाने तोरा आइनः साजद रुज्वां।
ख़ाके दर्गाहे तोरा सुर्मः कुनद हूरुलऐन॥
क़िसरे शाहस्तः बहर बाब ब अ ज खुल्दबरीं।
सखुने नेस्तदरीं बार्बाक खुलदेस्त बरीं॥
गुरफ़-ए-शाह नशीनो खुशो मतबूओ बलन्द।
कर्दः दर क़ितए ऊ जिन्नते आला तरमीन॥
चूं मलिके हरकि कुनद सिजद ए-ख़ाके दरे तौ।
शवद अज ख़ासियते ख़ाके दरत जुहरः जबीं॥

कोठरी के चारों ओर ध्यान पूर्वक देखने से ऐसा जान पड़ता है कि उसमें आठ बड़े बड़े चित्र चित्रित थे। इनमें से अब कोई भी पूरा नहीं है। कई तो पूर्ण नष्ट हो गए हैं, परन्तु जो वर्तमान हैं उनके देखने से ऐसा जान पड़ता है कि वे हिन्दुओं के देवी देवताओं तथा अन्य अन्य दृश्यों के चित्र थे। एक स्थान पर बुद्ध देव की मूर्ति है। दूसरे स्थान पर नावें बनी हुई हैं। कहीं हरिणों का शिकार हो रहा है और कहीं कुछ लोग खड़े हैं। इतिहास में यह बात प्रसिद्ध है कि अकबर के पास चित्रों का अच्छा संग्रह था। इससे सम्भव है कि उन्हीं में से कुछ चित्रों की नकल यहां बनवाई गई हो। जो कुछ हो, परन्तु इस कोठरी को सुन्दर और मनोहर बनाने में ऐसा जान पड़ता है कि कोई बात उठा नहीं रक्खी गई थी।

वीरबल का महल—फ़तहपुर सीकरी ।

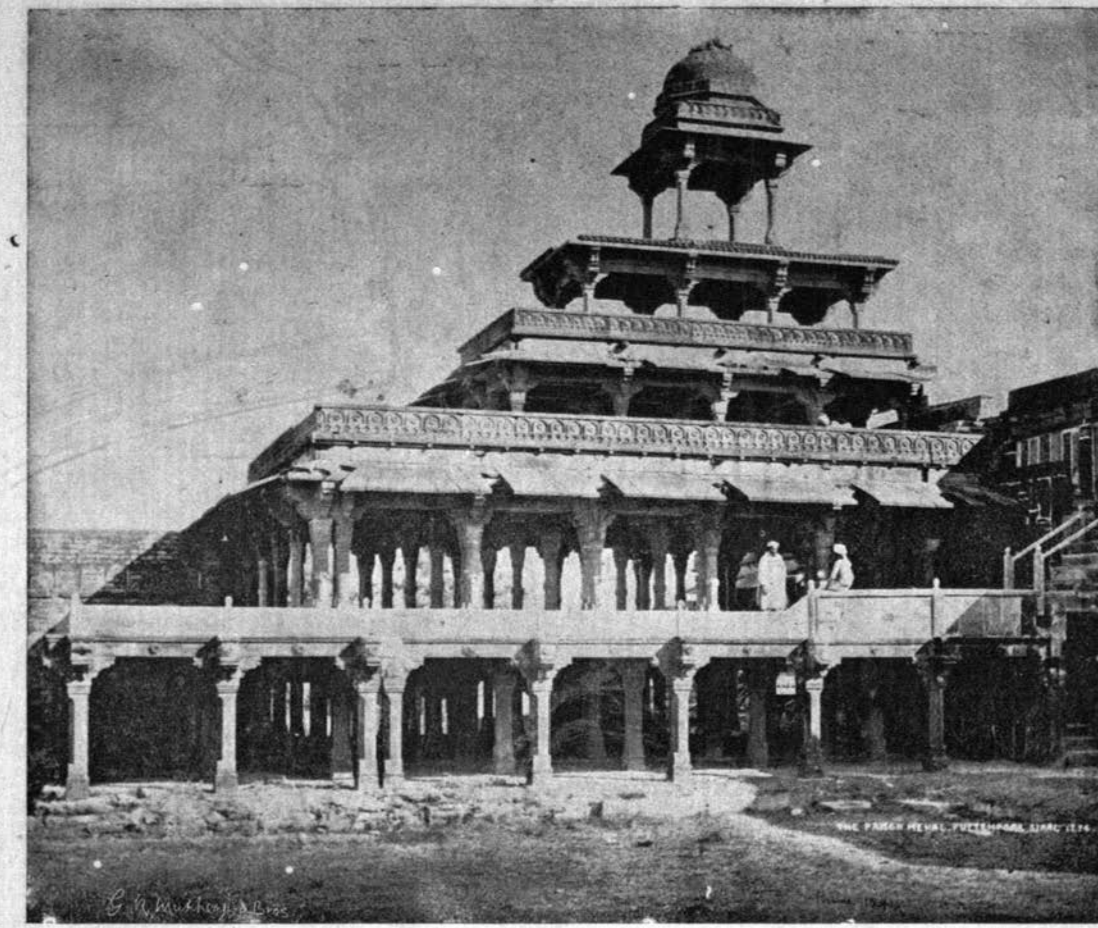

पञ्च महल—फ़तहपुर सीकरी ।

ख्वाबगाह के ठीक सामने एक पक्का तालाब है जो २९५ वर्ग फ़ीट की लम्बाई ग्रौर चौड़ाई में है। इसमें चारो ग्रोर पक्की सीढ़ियां लगी हुई हैं ग्रौर बीच में एक ऊंचा चौतरा है जिसपर जाने के लिये तालाब के चार किनारों से सुन्दर पत्थर के खम्भों पर एक पुल है। इसकी चौड़ाई केवल २० इञ्च है। इस तालाब में पानी नहरों से, जो खज़ाने से लगी हुई थीं, ग्राता था ग्रौर तालाब को सदा सुथरा रखने के लिये उत्तर की ग्रोर एक छेद बना हुग्रा है जिससे पानी निकाल दिया जाता था।

इस तालाब के उत्तरपूर्व कोने की ग्रोर सुलताना बेगम के रहने का स्थान था ग्रौर उसके साथ ही सटा हुग्रा एक बगीचा था, जिसका हम पहिले वर्णन कर चुके हैं ग्रौर जो दीवान ग्राम के पश्चिम पड़ता है। तालाब के उत्तर पश्चिम कोने की ग्रोर लड़कियों के पढ़ने का स्कूल है। इन दोनों के बीच में ग्रौर तालाब के ठीक उत्तर एक दालान चली गई है जिससे दोनो में जाने ग्राने का मार्ग है।

सुलताना बेगम का महल यद्यपि बहुत छोटा है, ग्रर्थात् भीतर की कोठरी केवल १३ फ़ीट लम्बी ग्रौर लगभग उतनी ही चौड़ी है, परन्तु बनावट उसकी ऐसी सुन्दर ग्रौर मनोहर है कि मिस्टर फ़र्गूसन के विचार में इससे ग्रौर बीरबल के भवन से बढ़कर सुन्दर ग्रौर मनोहर काम की ग्रौर कोई दूसरी इमारत ग्रकबर की बनवाई हुई नहीं है। इससे ग्रधिक सुन्दर ग्रौर ग्रच्छे बेलबूटों का काम ध्यान में कदाचित ही ग्रा सकता है। इसपर विशेषता यह है कि इतना ग्रधिक भी काम नहीं बनाया गया है कि वह भद्दा हो जाय। खम्भों ग्रौर छतों पर ग्रत्यन्त सुन्दर बेल बूटे बने हुए हैं। कहीं बगीचा लगा हुग्रा है, कहीं झरने बह रहे हैं ग्रौर पशु पक्षी जलविहार कर रहे हैं, ग्रौर कहीं घन घोर जङ्गल का चित्र खींचा हुग्रा है। कई एक विचारशील महाशयों ने कहा है कि यह घर मानो रत्नों की डिबिया है। वास्तव में यह ध्यान पूर्वक देखने योग्य है।

इसके ठीक सामने लड़कियों के पढ़ने के लिये एक स्कूल बना था, जिसमें दो कमरे हैं। उसमें शाहज़ादियां ग्रौर उमराग्रों की लड़कियां पढ़ना लिखना सीखती थीं।

इस स्थान के ठीक पश्चिम में एक स्थान बना हुग्रा है जो "पञ्च महल" के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी बनावट विचित्र है। इसके पांच खन हैं ग्रौर सब एक दूसरे के सहारे खम्भों पर खड़े हैं। पहिले खन में ८४, दूसरे में ५८, तीसरे में २०, चौथे में १२ ग्रौर पांचवें में केवल ४ खम्भे हैं। इसकी ऊंचाई लगभग ६० फ़ीट है, परन्तु बैठने का सबसे ऊंचा स्थान उससे १५ फ़ीट नीचा है, क्योंकि उपर जा कर गुम्बज बना दिया गया है। यह पञ्चमहल किस ग्रभिप्राय से बनाया गया था कुछ समझ में नहीं ग्राता। सम्भव है कि गर्मी के दिनों में ग्रकबर यहां पर ग्रपने स्नेही मन्त्रियों के साथ बैठता हो। परन्तु इसमें ग्राने के लिये एक द्वार महलों से लगा हुग्रा है, इससे ऐसा सम्भव जान पड़ता है कि इस पर ग्रकबर की बेगमें बैठती हों। जो कुछ है, स्थान सुन्दर ग्रौर सुहावना है ग्रौर इसके धुर ऊपर चढ़ने से चारो ग्रोर की छटा ग्रच्छी दिखाई देती है।

इस स्थान के पूर्व की ग्रोर एक बड़ा सा चौक है जिसमें पचीसी खेलने के लिये पत्थर की चौपड़ बनी हुई है। ऐसा कहा जाता है कि मोहरों के स्थान पर यहां लौंडियां भिन्न भिन्न रङ्ग के कपड़ों से सज धज कर बैठाई जाती थीं। ग्रकबर स्त्रीप्रिय ग्रौर विषयी था, यह बात तो यहां से पूर्णतया प्रगट है। जिस किसी ने उसके नौरोज़ या खुशरोज़ के बाज़ार का हाल पढ़ा होगा, वह इस बात को भली भांति समझ जायगा।

कर्नल टाड ग्रपने इतिहास में लिखते हैं कि वर्ष में एक दिन बादशाही महलों में बाज़ार लगता था, जिसमें विक्रेता ग्रमीर उमरा ग्रौर सरदारों तथा दर्बारियों की महिलाएं ग्रौर कन्याएं रहती थीं, ग्रौर क्रेता ग्रकबर की बेगमें। ग्रकबर

भी भेस बदलकर इस क्रय विक्रय को देखने जाता था। परन्तु वास्तव में वह राजपूत स्त्रियों के सतीत्व धर्म्म को क्रय करने के लिये भेष बदलता था। वह उन महिलाओं में से एक को पसन्द कर लेता था और उसे महलों तक ले आने का भार कुटनियों पर छोड़ आप चल देता था, जिसमें इस भेद को कोई जानने न पावें। वह मर्दों का भी एक बाज़ार करता था जिसमें आप खुला खुली चीज़ें ख़रीदने जाता था। अकबर को इस कुत्सित नीच कर्म का फल बीकानेर के राजकुमार पृथ्वीराज की सती साध्वी पत्नी ने चखाया था। एक वर्ष यह स्त्रीरत्न भी इस दुष्ट के जाल में फँस गई, और जब उसने देखा कि मुझे धोखा दिया गया है तो वह कटार निकाल अकबर के सामने खड़ी होगई और बोली कि 'रे नीच नराधम! आज तुझे समाप्त कर तेरे इस कुत्सित नीच कर्म को सदा सर्वदा के लिये रसातल में पहुचाऊंगी'। अकबर भयभीत हो उसके पैरों पर गिर पड़ा और क्षमा मांग कर उसने उससे प्रतिज्ञा की कि इस दिन से अब मैं इस कर्म को छोड़ दूंगा। हमारे पाठकों को विदित होगा कि येही पृथ्वीराज, जिनकी धर्मपत्नी ने अपने ऐसे साहस और सतीत्वधर्म का परिचय दिया, प्रतापसिंह के पूर्ण सहायक थे। इन्हींकी कविताशक्ति ने अन्त तक प्रताप को निज पण पर दृढ़ रक्खा। अब तक आगरे के किले में वह स्थान दिखाया जाता है जहां यह बाज़ार लगता था। जिस दिन हमें इसे देखकर संतप्त होना पड़ा था, उसी दिन कुछ अङ्गरेज़ उस चौक में टेनिस खेल रहे थे। अकबर का अनन्य भक्त अबुल फ़ज़ल लिखता है कि बादशाह उन बाज़ारों में इसलिये जाते थे कि जिससे देश की अवस्था का पता लग जाय। हा अकबर! जब तक तेरे चिन्ह इस भारत-वर्ष में वर्तमान रहेंगे, तेरी उज्वल कीर्ति के सामने यह बड़ी भारी कालिमा सदा देख पड़ती रहेगी।

इस पचीसी चौक के ठीक उत्तर दीवान ख़ास और आंख मिचौली खेलने का स्थान बना हुआ है। दीवान खास की बनावट विचित्र है। बाहर से देखने पर यह भवन दोखन का जान पड़ता है। परन्तु पहिले खन के ठीक बीच में एक खम्भा खड़ा है, जिस पर से चार धरने चार ओर चली गई हैं, और बीच में एक स्थान बैठने का बना है। दीवान ख़ास की बनावट में विशेषता यह है कि भीतर बैठा हुआ बाहर का सब हाल देख सकता है और बाहर से कोई यह नहीं जान सकता कि भीतर क्या हो रहा है। ऊपर के खन में चार ओर चार दालानें हैं, जिनमें ऐसा कहा जाता है कि अकबर के मन्त्री लोग बैठकर काम काज करते थे और अकबर बीच में बैठा हुआ उनकी बातें सुनता और अपनी सम्मति देता था।

इतिहास में यह बात प्रसिद्ध है कि सन् १५७५ ईसवी में अकबर ने एक इबादतख़ाना बनवाया था, जिसमें भिन्न भिन्न धर्म के लोग इकट्ठे होते और आपस में वाद विवाद करते थे, तथा अकबर उन सबकी बातों को सुनता था। ऐसा कहा जाता है कि इस घर में चार दालानें थीं जिनमें धार्मिक लोग तथा अकबर के आमात्यवर्ग बैठते थे और बीच में अकबर के बैठने का स्थान बना था। यहां अकबर प्रति शुक्रवार को आता था। यहीं पर अबुल फ़ज़ल, फ़ैज़ी और बीरबल से अकबर को घनिष्ट मित्रता हुई थी। सब धर्मों की बातें सुनते सुनते अकबर का विश्वास अपने धर्म से उसके कट्टरपन के कारण हटने लगा और उसके मित्रों ने भी उसको निज धर्म्म की पोल पुरी पुरी खोल दी। यह बात यहां तक बढ़ी कि फ़ैज़ी और अबुल फ़ज़ल की सहायता से वह अपने को पृथ्वी पर ईश्वर का दूत मानने और सूर्य की पूजा करने लगा। अकबर का विश्वास था कि जिस बात को मन सत्य न माने, उसे कभी हठ से न मानना चाहिए। सती बन्द करने में वह इसी कारण से दत्तचित्त हुआ। हिन्दूओं की ओर वह अधिक झुकता था और इसका कारण केवल अपनी कुटिल नीति का पोषण करना था। अकबर के दर्बार में नरहरि नाम का

एक कवि था। जब गोहत्या बहुत बढ़ गई तो उसने एक दिन बहुत सी गौओं को इकट्ठा कर सबके गले में एक पटरी लटकादी और उसपर यह छप्पय लिख दिया—

अरिहु दन्त तृन दबहिं ताहि नहिं मारि सकइ कोई।
हम सन्तत तृन चरहिं उच्चरहिं दीन होई।
अमृत पय नित स्रवहिं बच्छ महि थम्भन जावहिं
हिन्दुन मधुर न देहिं कटुक तुरकहिं न पियावहिं
कह नरहरि सुनु साह बर बिनवत गउ जोरे करन
केहिअपराध मोहि मारियतु मुयउ चाम सेवत चरन

अकबर जब उधर से चला तो उसने अधिक गौओं को खड़ा देखकर उसका कारण पूछा। नरहरि ने कहा कि ये कुछ प्रार्थना करने आई हैं। इसपर उसने उस करुणामय प्रार्थना को सुनकर, ऐसा कहा जाता है कि, अपने राज्य से गोवध उठा दिया था जिससे हिन्दू उसके चिरकृतज्ञ हो उसकी बड़ाई करने लगे।

अस्तु इस इबादतख़ाने के प्रभाव से न जाने क्या का क्या हो जाता, और सारा हिन्दू भारतवर्ष आज मुसलमान हो जाता, परन्तु जगतकर्ता को यह स्वीकार न था। कुछ लोगों का यह अनुमान है कि दीवानख़ास ही इबादतख़ाना था, परन्तु महलों के बीच में होने के कारण यह सम्भव नहीं जान पड़ता।

मिस्टर स्मिथ अनुमान करते हैं कि यह पहिले दीवान आम के सामनेवाले चौक में बना था। जो कुछ हो, परन्तु अभी तक कोई स्थान ऐसा नहीं मिला है जिसे हम इबादतख़ाना कह सकें।

[शेष आगे।

साहित्य समालोचना

[पूर्व प्रकाशित के आगे]

४—"कटूक्ति" अर्थात् श्रतिकटु—इसमें हमने "गहरे गहरे गर्त खड्ड दीरघ गहराई" और "उठरो खड्ड सों रहै बवंडर बीचहि छांड़रो" में श्रुतिकटु दोष आरोपित करने में अंगरेज़ी मत के विरुद्ध अवश्य लिखा, पर जब अंगरेज़ी से भाषा साहित्य के आचार्य्यों का मत नितान्त विरुद्ध है तब भाषा ही की रीति माननीय है। श्रुतिकटु के विषय में संस्कृत और भाषा पद्य काव्यों में बड़ा ही अन्तर है, संस्कृतज्ञ महाशयों के कर्ण भाषाकवियों की अपेक्षा बड़े सहनशील होते हैं। संस्कृत में बिना द्वित्व शब्दों के काम ही नहीं चल सकता, परन्तु भाषा पद्य में ऐसे शब्द विशेषतः कर्णकटु माने गए हैं, अतः संस्कृत के प्रमाण इस विषय पर भाषा पद्य काव्य में माननीय नहीं हैं। फिर हिमालय के वर्णन में पाठक जी ने शृङ्गार प्रधान रक्खा है, क्योंकि आद्योपान्त उसकी शोभा ही का वर्णन अधिक किया है, और अन्त में यह भी लिखा है कि "श्रीधर दृग छकि रहत अटल छवि निरखि हिमालय"—जिससे यह स्पष्टतया परिलक्षित होता है कि हिमालय को देख कर ये डरने के स्थान पर प्रसन्न हुए; तो ऐसी स्थिति में उसका वर्णन रौद्र प्रधान कैसे हो सकता है। जब तुलसीदास जी, का रामचन्द्र जी के मुख से वन का वर्णन करा के सीता जी को डराना अभीष्ट था, तो भी उस महाकवि ने ऐसे कठोर व श्रुतिकटु शब्दों का व्यवहृत होना अनुचित ही विचारा और यों वर्णन किया,—

कानन कठिन भयङ्कर भारी।
घोर घाम हिमि वारि बयारी॥
कुस कण्टक बन कांकर नाना।
चलब पयादेहि बिनु पदत्राना॥
चरन कमल मृदु मञ्जु तुमारे।
मारग अगम भूमिधर भारे॥
कन्दर खोह नदी नद नारे।
अगम अगाध न जांहिं निहारे॥
भालु बाघ केंहरि वृक नागा।
करत नाद सुनि धीरज भागा॥

भूमि सयन बलकल वसन असन कन्द फल मूल ।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं समय समय अनुकूल ॥
नर अहार रजनीचर करहीं ।
कपट वेष वन कोटिन फिरहीं ॥
लागइ अति पहार कर पानी ।
विपिनि विपति नहिं जाइ बखानी ॥
व्याल कराल विहग वन घोरा ।
निसिचर निकर नारि नर चोरा ॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आये ।
मृगलोचनि तुम भीरु सुभाये ॥ इत्यादि

अब यदि कहा जाय कि तुलसीदास जी ने खड्ड देखे नहीं तो यह बात माननीय कैसे हो कि उक्त महात्मा कभी हिमालय पर गए ही नहीं, जिनका कि जन्म केवल तीर्थयात्रा ही में व्यतीत हुआ ? तो पाठक जी को निष्प्रयोजन ऐसे शब्दों में वर्णन करने की क्या आवश्यकता पड़ी थी ?

"सत्य धर्म कर्म निष्ठ धीर वीर वर वरिष्ठ
सौम्यता बिसिष्ट शिष्ट सादर सतकारी "

इत्यादि पद में (आपके कथनानुसार) यमक तो है नहीं, क्योंकि यमक का लक्षण यों है,—यथा

"वहै शब्द फिर फिर परै अर्थ औरई और
सो यमकानुप्रास है भेद अनेकनि ठौर"
(दास जी)

हां अनुप्रास अर्थात् पदमैत्री अवश्य है, परन्तु जैसा कि हमने अपने साहित्य-आलोचना में लिखा है, यह एक बहुत छोटा गुण है और इसके निमित्त शब्दों में एक दोष लाना निन्दनीय है। यदि इस पद के शब्द श्रुत्तिप्रिय कहे जांय तो कदाचित् कर्णकटु शब्दों का उदाहरण भाषा साहित्य में मिलना दुस्तर हो जाय।

आप लिखते हैं कि "भूदृग दृष्टि शिथिल तन दुर्वल ज्यों नव शुष्क मृणाल"। यदि इस पंक्ति का माधुर्य्य कर्कशता के नाम से पुकारा जा सकता है, तो सहृदयता का अन्त है। इसमें यह निवेदन है कि सहृदयता का लक्षण स्वर्गवासी पण्डित विष्णुकृष्ण शास्त्री चिपलूणकर अपने "समालोचना नाम निबन्ध" में यों लिखते है कि " किसी ग्रन्थ के अंतःकरण के पूर्ण अभिनिवेश की योग्यता को सहृदयता कहते हैं "। अतएव किसीके काव्य के दोषों के छिपाने को सहृदयता कदापि नहीं कह सकते ! दास जी श्रुतिकटु के विषय में यों कहते हैं,—

"कानन को करुवो लगै दास सुश्रुतिकटु सृष्टि
त्रिया अलक चक्षुश्रवा डसैं परत ही दृष्टि ॥ "

और इसका तिलक यों किया है "चक्षुश्रवा औ दृष्टि ए शब्द ही दुष्ट हैं, श्रुति शब्द सकारन के समासते दुष्ट भयो। त्रिया शब्द में को रकारहो दुष्ट है, यहां तीनौं भाँति को श्रुतिकटु कह्यो "। सो यह टीका दास जी ने मानो हमारे पाठक जी ही के छन्द निमित्त रची थी। महाकवि तुलसीदास जी ने अपनी रामायण* अयोध्या काण्ड के पूर्वार्ध ही में ३७२ स्थानों में (श) के स्थान पर (स), १६४ शब्दों में (ण) के स्थान पर (न), ६८ में (ˆ अर्थात् रेफ) के स्थान पर (र)–(यथा अर्घ्य, का अरघ),–२० में (क्ष) के स्थान पर (छ), १७ में (व) के स्थान पर (उ)–(यथा स्वभाव का सुभाउ),–१५ में (य) का (ज), ३४ स्थानों पर मिलित अक्षरों कौ अलग करके–(यथा परस्पर का परसपर)–लिखा है, और ९ स्थानों पर अर्द्ध 'ऋ' वा 'र' उड़ादिया है–(यथा तृण का तिन इत्यादि)। "सुकवि नाम प्रभु नाम कै कै रस रौद्र प्रधान–तंह श्रुतिकटु की दोष नहि"। इन स्थानों पर श्रुतिकटु दोष न माननीय होने पर भी इन महोदय ने रामचन्द्र जी के स्थान पर रामचंद ही लिखना उचित समझा। उदाहरणस्वरूप हम कुछ परिवर्तित शब्द और पद नीचे उद्धृत करते हैं, परन्तु खेद का विषय है कि प्रेसों की मुद्रित अन्य रामायणों में प्रायः पण्डितों के संशोधक होने के कारण उक्त महाशयों द्वारा परिवर्तित शब्दों के स्थान पर शुद्ध संस्कृत के इतने शब्द आ गए हैं कि रामायण की मुख्य भाषा ही लुप्तप्राय हो गई; यथा—

* बाँकीपुर के खड्गविलास प्रेस में मुद्रित प्रति देखिए।

शुद्ध शब्द	परिवर्तित शब्द	उदाहरण अयोध्याकाण्ड पूर्वार्द्ध से उद्धृत।
भक्त	भगत	हरउ भगत मन कै कुटिलाई
योग्य	जोगु	जारइ जोगु सुभाउ हमारा
शुद्ध	सूध	काह करौं सषि सूध सुभाऊ
तृण	तिन	चरइ हरित तिन बलिपसु जैसे
द्वै	दुइ	दुइ बरदान भूप सन थाती
लवण	लोंन	मानहु लोन जरे पर देई
असाध्य	असाधि	देषी व्याधि असाधि नृप
पल्लव	पालव	पालव बैठि पेडु यहि काटा
ज्वर	जर	जरहि बिषम जर लेहि उसासा
भ्रमर	भँवरु	निरषि राम मनु भँवरु न भूला,
शोक	सोग	लोग सोग श्रम बस गए सोई
स्वप्न	सपन	देषिय सपन अनेक प्रकारा
वृद्ध	बिरिध	जे तिन महँ वय बिरिध सयाने
युक्ति	जुगुति	ते करि जुगुति राम पहिँचाने
द्युति	दुति	इनते लहि दुति मरकत सोने
अमृत	अमिय	बानी मधुर अमिय रस बोरी
स्वर्ग	सरगु	सरगु नरकु अपवरगु
दृष्टि	डीठि	लोचन सजल डीठि भई थोरी
श्रृंगमेरु	सिंगरौर	सो जामिनि सिंगरौर गंवाई
अर्घ्य	अरघ	सादर अरघ देई घर आने
पण	पनु	जेहि न प्रेम पनु मोर निबाहा

भाषा के प्रायः सभी अन्य कवियों ने इसी हेतु शब्दों को परिवर्तित किया है—और देव जी और मतिराम जी का काव्य मानो इसका उदाहरण ही हो रहा है ; उनसे कहां तक उद्धृत किया जाय और कवियों को लीजिए—

"डीठि बरत बांधी अटन चढ़ि धावत न डरात
नीठि नीठि करि कै गई डीठि डीठि सों जोरि"
(बिहारी लाल जी)

"डीठि सी डीठि लगी इनके
उनके लगी मूठि सी मूठि गुलाल को"
(पद्माकर जी)

इत्यादि, इत्यादि, कहां तक लिखें। स्वयं पाठक जी ने भी कई स्थानों पर ऐसा किया है, परन्तु इन स्थानों में शब्दों का परिवर्तन न जानें क्यों नहीं किया। अब यदि ऊपर उद्धृत पदों में शुद्ध शब्द अर्थात् दृष्टि, निष्ट, और मुष्टि लिख दिए जांय, तो क्या ये पद कर्णकटु न हो जांय? आप कहते हैं कि "सत्य धर्म कर्म निष्ठ इत्यादि इस पद के शब्द कंकड़ नहीं हैं रत्न हैं"। इसमें यही निवेदन है कि शब्द ही रत्न होते हैं और वही कंकड पत्थर, परन्तु इन रत्नों के परखनेवाले जौहरी केवल काव्य आचार्य्य हैं। सो देखिए इन रत्नों को वह किन दामों पर आंकते हैं, यथा—

(१) "कानन को करुवो लगै दास सु श्रुतिकटु सृष्टि
त्रिया अलक चक्षु श्रवा डसै पृरतही दृष्टि"
(दासजी)

(२) "श्रवन सुनत नहि भावै श्रुतिकटु होय
कर्ताध्या इत्यादिक जानों सोय" (जगत सिंह)
(इन के मत में दोषोद्धार ठीक नहीं। बड़े
कविन में होइ तौ शांत करिलेइ आपु न करै)।

(३) "श्रवन सुने अति कटु लगै श्रुतिकटु ताहि
बखानि।
देखि जलक्षन मुख मलिन चढ़ति अटा पर
बाल"
[टी० यहां जलक्ष श्रुतिकटु है, जलद कह्यो
चाही"] (प्रताप साहि।

(४) "सुनतै श्रुति नहिं भावई पढ़त जीभ सन कष्ट
श्रुति कटु सो यह जानिए सकल कवित में भ्रष्ट"

"कैसे पुन्य थल पर श्रीपति कनक वेलि जैसे रुपगिरि पर बिद्रुम की छरी है। कैसे रूप गिरि पर विद्रुम की छरी कहि जैसे छीर सिंधु पर ब्रह्म ज्योति धरी है। कैसे छोर सिन्धु पर ब्रह्म ज्योति धरी कहि, जैसे हीरा हारन पै लालन की लरी है। कैसे हीरा हारन पै लालन की लरी कहि, जैसे धौरे धाम पर गोरी भोरी खरी है" यामे पुन्य विद्रुम ब्रह्म शब्द कटु। रसिकप्रियायां यथा—

"कानन के रंगे रङ्ग नैनन के डोलै, सङ्ग नासा अग्र रसना के रसहि रसाने हो। और गूढ़ कहा कहौं मूढ़ हौ जूजाने जाहु, प्रौढ़ रूढ़ केसौदास परि

पहिचाने हो ॥ तन आन मन आन कपट निधान कान्ह, सांची कहो मेरी आन काहे को डेराने हो। वै तो हैं बिकानों हाथ मेरे हैं तिहारे हाथ, तुम वृजनाथ हाथ कौन के बिकाने हो।

या मैं अग्र पद श्रुति कटु" (श्री पति जी)

क्या श्री धर जी के पद्य श्री पति जी के उदाहरणों से भी मृदुल और सोष्ठव हैं ?

(५) "छन्दोभंग"–पर्यालोचक महाशय लिखते हैं कि "पाठक जी के मत में सरस वाक्य मात्र कविता है" इस विषय की हमने "सरस्वती" के दिसम्बर सन् १९०० वाले अङ्क में प्रकाशित अपने "हिन्दी काव्य" में विवेचना की है और बाबू जगन्नाथ दास ने साहित्य रत्नाकर काव्य निरूपण खण्ड में "पाठक जी के मत" का (जो वास्तव में सूरति मिश्र के दिए हुए एक लक्षण का स्वल्पांश है) युक्ति और प्रमाण सहित खण्डन किया है। जब तक आप या पाठक जी विपक्ष प्रमाण दे उसे अशुद्ध न सिद्ध कर दें, तब तक एक ही बात का पिष्टपेषण करना हमें अभीष्ट नहीं।

फिर आप कहते हैं "छन्दोभङ्ग यद्यपि पद्य सम्बन्धी एक दूषण है, तथापि यदि उससे रस भङ्ग न हो तो दूषण नहीं"। यह तो बड़ी ही विलक्षण कहावत है और इस हिसाब से स्वयं पाठक जी का रचा हुआ पद "पङ्कज बृन्द बिसै परभात सुहातौ सौ बात बहै मद सान्यों" यदि यों पढ़ें कि "परभात पङ्कज बृन्द बिसै बात सुहातौ सौ बहै मद सान्यों" तो भी छन्दोभङ्ग उसमें नहीं ठहर सकता; क्योंकि "उससे रसभङ्ग नहीं होता"। पर हम तो जानते हैं कि पर्यालोचक महाशय को छोड़ और पृथ्वी मण्डल में कोई भी ऐसा न कहैगा। तुलसीदास जी अथवा उनसे भी बड़े किसी कवि की रचना में पाए जाने से क्या छन्दोभङ्ग दूषण ही न रह जायगा? जब हम स्वयम् गोस्वामी जी की कविता पर अपनी समालोचना प्रकाशित करेंगे तब आप क्या कहेंगे? क्या संस्कृत साहित्य प्रणाली के आचार्य्यों ने दोषों के उदाहरणों में कालिदास, भारवि, भवभूति और श्रीहर्ष, प्रभृति की कविता उद्धृत नहीं की है? छन्दोभङ्ग तो सुपाठ्यता का बाधक अवश्यमेव होता है, और "खल्यान के काम से किसान निवट गए" और समस्यापूर्ति वाले कवित्त "आज क्यों गोकुल गलीन अलबेली नारि सखी औ सहेली संग हेलो करति है" इत्यादि इन सभों में क्या छन्द की सुपाठ्यता और श्रुतिप्रियता छन्दोभङ्गों से वस्तुतः बाधित नहीं होती? हम तो कहते हैं कि ये पद छन्द ही कहलाने योग्य नहीं हैं! जिन दो सवैयों के प्रथम चरणों में हमने दो दो लघु अक्षरों की कमी बतला कर उनमें छन्दोभङ्ग ठहराया था, उनमें तो आपके मत से भी छन्दोभङ्ग अवश्य है, चाहै वह सुपाठ्यता का बाधक न होने से "क्षन्तव्य" भले ही हो। तब आपका कहना कि "उक्त (दो दो लघु) वर्णों का छोड़ना दूषण नहीं है" कैसे ठीक माना जाय, क्योंकि आपही के उपरोक्त मतानुसार वह एक "क्षंतव्य" दूषण निस्सन्देह है? "छन्दोभङ्ग" किसी छन्द के पिङ्गल व रीति ग्रन्थों के विरुद्ध होने से होता है। यदि यह जानी मन मानी की ठहरै तो गद्य और पद्य में भेद ही क्या रहजाय? जो आप छन्द के प्रथम पद में दो वर्ण कम कर सकते हैं, तो द्वितीय अथवा किसी अन्य चरण में वर्णों की कमी कोई क्यों नहीं कर सकता? फिर ऐसी दशा में छन्द का बनना असम्भव हो जायगा और प्रत्येक छन्द और कवि के भ्रमानुसार विचारा पिंगल कहां तक झोंके खायगा? और प्रतिदिन उसके नियम कहां परिवर्तित होंगे? सरस्वती के ३५६ पृष्ठ वाले तक छन्द में छन्दोभङ्ग नहीं है, पर्यालोचक जी के रुचिके प्रतिकूल वह भले ही हो।

"यतिभङ्ग"—हम ऊपर कह आए हैं कि किसी सत्कवि की रचना में आजाने से कोई दूषण दूषणों की श्रेणी से नहीं हटा दिया जासकता—सो यदि भारतेन्दु जी की कविता में कहीं "यतिभङ्ग दूषण मिलजाय तो इससे यह स्थिर कर लेना

कि अब वह दूषण ही न रहा, सर्वथा भ्रममूलक है। श्रीपति जी ने केशवदास जी की कविता से यतिभङ्ग का उदाहरण दिया है, यथा–

"बृज की कुमारिका वै लीन्हें सुक सारिका, पढ़ावैं कोक कारिका न केसव सवै निवाहि"। यदि बड़े कवियों के काव्य में आने से दूषण भूषण हो जाते हैं तो इसमें तथा और और सहस्रों स्थलों पर वह कैसे दूषण बने रहे ?

हम पहिले ही से जानते हैं कि Hermit की प्रथम चार पंक्तियों का जो हमने अनुवाद किया, उसमें भी यतिभंग है। पर इससे क्या ? यदि बाबू हरिश्चन्द्र जी और हमारी कविता में कोई दूषण संस्थापित हो जाय तो क्या पाठक जी की रचनाओं के अर्थ वही दूषण भूषण हो जायगा ? फिर हमने तो यह थोड़ासा अनुवाद यही सिद्ध करने को किया ही था कि पंक्ति प्रति पंक्ति और शब्द प्रति शब्द अनुवाद का निर्दोष होना एक प्रकार से असम्भव सा है। हम इस लेख के प्रथम भाग में सिद्ध कर-चुके हैं कि हमारे कवि जी की "नवीन" और "पुरानी कृत्ति" में विशेष अन्तर नहीं है और यदि है भी तो उनकी बालकाल की कविता ही विशेष श्लाघनीय कही जायगी। अतः समस्यापूर्ति के अंतर्गत घनाक्षरी आदि का "पाठक जी की पुरानी कृति" कहने से कोई प्रयोजन नहीं, क्योंकि उनके उसी काल (सन् १८८४-८५) के भ्रमराष्टक, हिमालय इत्यादि अत्यन्त विलक्षण पद्य भी वर्तमान हैं, वास्तव में वह अवश्यमेव एक असम कवि (Unequal Poet) हैं।

हम नहीं समझते कि पाठक जी ने किस विचार से "बिना सोधे ही उक्त घनाक्षरियों को संग्रह में सन्निवेशित कर दिया"। "उनका वैसाही छपना उन्हें' भलेही प्रिय लगे, पर औरों को तो वह कदापि "प्रिय' न लगैगा। फिर पाठक जी ने कुछ अन्य पद्यों को संशोधित भी किया है (जैसे वसन्तागमन और वसन्त राज्य)। तब इन घनाक्षरियों को शोधने में क्या दोष था ? यदि उन्हें घनाक्षरी से बड़ा प्रेम नहीं है तो उनके निर्माण करने की क्या आवश्यकता थी ? पर्यालोचक जी लिखते हैं "पण्डित श्यामविहारी जी को पाठक जी ने अपनी उक्त घनाक्षरियों का दोष स्वयं सूचित कर दिया था, और उन्हीं घनाक्षरियों पर समालोचकों ने बड़े वेग का आक्षेप किया है ! यह उनका परम सैाजन्य है"। जब गोलोकवासी पण्डित अम्बिकादत्त जी ने यह लिखा था कि "मैंने अपना पचड़ा गाया है", तब भी बंगवासी ने उनका खण्डन क्यों किया ? यह तो संस्कृत और भाषा काव्यों की प्रणाली सी है कि कविजन आधीनतासूचक बचन लिखते हैं; यथा रघुवंशे–

"मंदः कवि यशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
(महाकवि कालिदास जी)

"कहँ रघुपति के चरित अपारा
कहं मति मोरि निरत संसारा
जेहि मारुत महँ मेरु उड़ाही *
कहहु तूल केहि लेखे माही"
(तुलसीदास जी)

पर्यालोचक जी के उपरोक्त कथन पर हमें कुछ विस्तार पूर्वक लिखना पड़ता है ! जब हमने अपने दो एक मित्रों के आग्रहवशात् पाठक जी से उनकी कविता पर समालोचना करने की आज्ञा मांगी तब उन्होंने हमें अंगरेज़ी में एक वृहत पत्र लिखा, जिसका कुछ आशय हम यहां पर प्रकाशित करते हैं—"मुझे ज्ञात है कि मेरी कविता में दोषों और त्रुटियों का एक समूह वर्तमान है............अपनी कतिपय रचनाओं में अनेक अशुद्धियों और दूषणों का होना मुझपर विदित है, जिनमें से कुछ तो मुद्रण की और शेष साहित्यसम्बन्धी हैं। ए० वा० यो० में पृष्ठ ४ पंक्ति ६ में "धुआं" के स्थान पर "फुआं" और पृष्ठ ७ पंक्ति ११ में "प्रथम" के स्थान पर "प्रेम" पढ़िये। यह मुद्रण की (अशुद्धियां) हैं। ऊ० ग० क्रोड़पत्र में पंक्ति * के नोट को कृपया

* पंक्ति शब्द के आगे थोड़ा स्थान छूटा है और उनकी गणना सम्भवतः पत्र में भूल से छूट गई है

कटा हुआ समझिए। मनेविनोद की मेरी कतिपय प्राचीनकाल की घनाक्षरियों में भी अशुद्धियां पाई जायंगी, पर मैंने उन्हें उसी स्वरूप में जिसमें वे प्रथम बार रची गई थीं, उनको मिती के कारण रहने दिया है"। सो इस पत्र में पाठक जी ने हमें अपनी घनाक्षरियों में दोष का होना अवश्य सूचित कर दिया था, पर हमने जो उनमें भी दूषण बतलाए उसके कारण यह हैं—

'यदि पाठक जी चाहते तो जैसे उन्होंने बसन्तागमन और बसन्तराज्य (सन् १८८१ के रचे हुए पद्यों) को सन् १९०० में संशोधन किया है, वैसेही इन्हें भी उसी प्रकार संशोधन की मिती का नोट लगा कर शुद्ध कर सकते थे। पर उन्होंने ऐसा न किया और पर्य्यालोचक जी के कथनानुसार "उन (घनाक्षरियों) का वैसाही छपना उन्हें (अर्थात् पाठक जी को) प्रिय लगा"। इससे तो यही ज्ञात होता है कि पाठक जी महाशय को उनमें कोई विशेष दूषण कदापि नहीं जान पड़ा था। ऐसी दशा में उन घनाक्षरियों और इस पद में कि "ज्वार बाजरा आदि कभो के कट गए— खल्यान के काम से किसान निबट गए" जो हमने अत्यन्त भदेसिल छन्दोभङ्ग बतलाए तो क्या पाप किया? यदि कोई व्यक्ति किसी वस्तु में "कोई बिशेष दूषण" न माने और हमें वही वस्तु अत्यन्त दूषित समझ पड़े, तो क्या ऐसा कह देना इतना बड़ा दोष है कि इस बात पर हमें कोई "दुर्जन" इत्यादि उपाधियों से विभूषित करने लगे! हमें तू-तू मैं-मैं करना अभीष्ट नहीं है, पर्य्यालोचक जी हमारे पाठक जी को कविता में कोई दूषण ठहराने के अपराध में चाहे हमारा "सौजन्य" समझें और चाहे दौर्जन्य!! पर आश्चर्य तो इस बात पर होता है कि ऐसे शिष्ट और सभ्य शब्दों का व्यवहार करते हुए भी पर्य्यालोचक जी हमारी समालोचना में "अविनीत" और "असाधु" भाषा व्यवहृत समझ उसपर ऐसे तीव्र कटाक्ष करें!!!

आप कहते हैं "भदेसिल, अच्छाई नहीं उड़ जायगी, छन्द भी गढ़ लेते हैं, बिलकुल डुबोही दिया, ये (शब्द) असाधु और अविनीत हैं"। इस पर हमारा प्रश्न तो यह है कि इनमें से कोई वाक्य ऐसा भी है कि जिसमें हमने पाठक जी को "दुर्जन" बतला दिया हो? फिर अन्तिम वाक्य के सिवाय शेष तीन हमारी समझ में अणुमात्र भी असाधु या अविनीत नहीं हैं। "भदेसिल" शब्द अपने आशयानुसार आप भी वैसाही अवश्य है, पर उसमें असाधुता क्या है? "अच्छाई उड़ जायगी" इसमें भी असाधुता की क्या बात है? और जिस सम्बन्ध में ये शब्द आए हैं, उससे तो पाठक जी की प्रशंसा की गई है, सो प्रशंसा में भी अविनीतता आपको कैसे मिल गई? "छन्द गढ़ लेना" इसमें भी असाधुता की कोई बात नहीं है! "गढ़लेना" अंगरेज़ी शब्द "to coin" का अनुवाद है, जो अंगरेज़ी पुस्तकों में बराबर व्यवहृत होता है। हां, यदि कोई कहै की "वह मनुष्य बातें बहुत गढ़ता है," तब यह शब्द प्रसंगबशात् असाधु कहा जायगा। पर हमने इस आशय में उसका व्यवहार नहीं किया है। "डुबोही दिया" वस्तुतः अविनीत शब्द है, किन्तु वह इतना कटु कदापि नहीं जितना किसीको दुर्जन कह देना। जहां हमने पाठक जी की इतनी प्रशंसा की कि जिसका वारापार नहीं, और जो हमारी समालोचना के अवलोकन से भली भांति जानी जा सकती है और जिसको पढ़कर (स्वयं) पाठक जी भी "आल्हादित हैं," वहां यदि उनकी कवित्व शक्ति पर (स्वयं उनपर नहीं) दो एक तीक्ष्ण शब्दों का समुचित रीति पर प्रयोग कर दिया, तो वह पर्य्यालोचक जी की हम पर इस कृपा का शतांश भी निन्द्य नहीं कहा जा सकता कि जिससे उन्होंने, हमारे काव्य अथवा समालोचना को छोड़ स्वयं हमारे "सौजन्य" पर इतना घोर आक्षेप किया!! अस्तु इसपर अब अधिक कुछ न लिख हम आगे बढ़ते हैं [शेष आगे।

जापान के सम्राट

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २] दिसम्बर १९०१ ई० [संख्या १२

विविध वार्त्ता

इस दिसम्बर मास की संख्या के साथ "सरस्वती" के जीवनकाल का यह दूसरा वर्ष समाप्त हुआ। इस वर्ष में हमने किस प्रकार इस पत्रिका को चलाया और कहां तक हम अपने पाठकों को प्रसन्न करके निज मातृभाषा हिन्दी की सेवा कर सके हैं, इन बातों का निर्णय करना हमें उचित नहीं है। इनपर विचार करने का भार हम अपने सहृदय पाठकों और विचारवान हिन्दी मर्म्मज्ञों पर छोड़ते हैं। परन्तु इतना हम कहदेना उचित समझते हैं कि विवाद और परस्पर की निन्दा और ईर्षा द्वेष से हम बचे रहे, और लेखों के स्वीकार करने या लिखने में हमने किसीका पक्ष अथवा विरोध नहीं किया है। हमने इस भाव से जहां तक हमसे बन पड़ा है अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। हम इस स्थान पर अपनी तथा प्रकाशक की ओर से उन सब महानुभावों को हृदय से धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने समय समय पर लेखों द्वारा हमारी सहायता की है। यदि इन महाशयों की सहायता न होती, तो हम कदाचित उतने भी सफल न हो सकते जितने कि हम हुए हैं। साथही हम उन सच्चे देशहितैषी उदारचेता लोगों के भी कृतज्ञ है जिन्होंने अपने अमूल्य कटाक्षों से हमारा उपकार कर आप तमाशा देखा और दूसरों को दिखाया है! इन देशप्रिय, भाषाप्रिय तमाशबीनों की यदि कृपा रही तो हमें दृढ़ विश्वास है कि हमारी हिन्दी की खूबही उन्नति होगी!! इन महानुभावों ने यदि हमपर कटाक्ष किया तो क्या किया, इनको तो प्रकृतिही ऐसी है! परन्तु हमारे दोष और त्रुटियों को जो महाशय चाहे जिस प्रकृति से दिखा दें, हम उनके कृतज्ञ ही होते हैं; क्योंकि सरस्वती के समान नवीन उद्यम में हमको स्वयं ही बड़ी बड़ी त्रुटियां दिखाई पड़ती हैं; हम स्वयं ही उनके सुधारने के लिये दत्तचित्त हैं। परन्तु हां, हमको विशेष आश्चर्य तो उस समय होता है जब कटाक्षकारों में हम

उनको देखते हैं जिन्होंने जन्म भर उर्दू पढ़ने लिखने में अपना काल बिताया है और जिन्होंने इस समय यह न जानते हुए भी, कि हिन्दी और उर्दू के व्याकरण में क्या क्या मुख्य भेद हैं और कैसे शुद्ध हिन्दी लिखी जा सकती है, अपनेको हिन्दी का धुरन्धर लिक्खाड़ मान रक्खा है और जो बामन समान हो अपने से उच्चतम पुरुषों की पगड़ी तक अपने नन्हें नन्हें हाथों के पहुंचाने का साहस करते, और यदि आज कल हरिश्चन्द्र जीवित रहते तो उनसे भी लेखनी रखवा लेने की डींग हांकते हैं। ऐसे परनिन्दारत और 'विषकुम्भम् पयोमुखम्' की उपाधि को चरितार्थ करनेवाले महानुभावों को हम दूरही से प्रणाम करते हैं और उनकी बातों पर उपेक्षा करना ही उचित समझते हैं। हमने गत दो वर्षों में ऐसे लोगों की बातों पर कुछ भी ध्यान देना उचित न समझा और मौन साधकर अपने कर्त्तव्य पथ पर दृढ़ रहने ही में अपना सौभाग्य माना। इस वर्ष जिन जिन महानुभाव लेखकों ने हमारी भेट लेना उचित समझा, आर्थिक पुरस्कार से हमने उनकी सेवा की। हिन्दी के इतिहास में यह बात नई है, पर इससे अनेक लाभ समझ हमने इसी नीति का अवलम्बन करना उचित समझा। किन्तु इन सब बातों के करने पर भी हमें इस वर्ष कई सौ रुपयों का घाटा उठाना पड़ा। यह बात हिन्दी समाज के लिये लज्जा की और हमारे लिये निरुत्साह की है। इस अवस्था में हम काश्मीराधिपति श्रीमान महाराज प्रतापसिंह जी और रीवांधिपति श्रीमान महाराज वेंकट रामानुजप्रसाद सिंह जी के विशेष अनुगृहीत हैं, कि उन्होंने सरस्वती की विशेष सहायता कर हमारे उत्साह को बढ़ाया और अपनी गुणग्राहकता का विशेष परिचय दिया। अस्तु घाटा सहने पर भी हम तीसरे वर्ष में भी इस पत्रिका को निकालेंगें, क्योंकि 'सरस्वती' के ग्राहक अन्तःसलिला फल्गू नदी की भांति धीरे धीरे, मृन्दु मन्द गति से, नित्य प्रति बढ़ते ही जाते हैं। हिन्दी में सरस्वती एक नवीन वस्तु है, और इसके रूप, रंग, सज, धज, लेख आदि सब बातों को इसकी वर्तमान अवस्था से अधिकतर सुन्दर बनाना हमको अभीष्ट है। परन्तु हिन्दी रसिकों की सहायता बिना हम अभी अधिक कुछ नहीं कर सकते। हमें पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी के रसिक हमारी अधिकतर सहायता करने से आगामी वर्ष में पराङ्मुख न होंगे।

* * *

हमें पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी जी लिखित एक प्रति "हिन्दी कालिदास की समालोचना" प्राप्त हुई है। इस पुस्तक में लाला सीताराम द्वारा अनुवादित कुमारसम्भव, ऋतुसंहार, मेघदूत और रघुवंश, कवि कालिदास के इन्हीं चार काव्यों की समालोचना है। पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री इस पुस्तक के विषय में लिखते हैं कि—

"हिन्दी में द्विवेदी जी की उक्त कृति का नाम सुनकर केवल हिन्दी वा संस्कृत के विद्वान् मात्र ही नहीं, किन्तु उपाधिधृक लोगों के निम्नश्रेणिस्थ अङ्गरेज़ी के विद्वान् लोग भी आश्चर्य्य चकित होंगे, इसमें अणुमात्र भी संदेह नहीं है। क्योंकि हिन्दी में पुस्तकाकार समालोचनाओं का प्रकाशित होना आज दिन लों अभूतपूर्व है। अभी लों ऐसे ग्रन्थों की आवश्यकता ही नहीं थी; यही कारण है कि अद्यावधि हिन्दी में ऐसे ग्रन्थों की सृष्टि नहीं हुई। पर अब ईश्वर की कृपा से ऐसे अनेक ग्रन्थों की आवश्यकता उपस्थित हुई है। ऐसे अवसर पर उक्त द्विवेदी जी ने, प्रचण्ड परिश्रम कर उक्त ग्रन्थ की सृष्टिद्वारा हिन्दी के पठितसमाज को जो आशातीत लाभ पहुंचाने का परम श्लाघ्य प्रयत्न किया है, तदर्थ हिन्दी का पठितसमाज आपका चिर कृतज्ञ रहैगा।

"संसार भर के विद्वान् मात्रके मुख से यह बात सुनाई देती है कि संसार में ऐसा कोई मनुष्य न होगा जो सरस्वती के लाल कालिदास का नाम न जानता हो। इस विस्तृति एवं चिर विख्याति

का कोई कारण अवश्यमेव होना चाहिये ; क्योंकि जबसे यह प्रपञ्च आविर्भूत हुआ है, तबसे इसमें कई कविगण हुए होंगे, पर उनके ग्रन्थ और नाम न जाने कब लुप्त हो गए। इस कथन से यह बात सिद्ध होती है कि जिस कवि की कृति, परिवर्त्तनशील संसार के अनेकानेक हेर फेरों को देख, प्रचण्ड बली काल द्वारा कबलित न होकर, उत्तरोत्तर विद्वज्जनों द्वारा अधिकाधिक समादृत होती आई है, उसमें निःसंदेह कोई न कोई पीयूषपूरित द्रव्य अवश्यमेव रहना चाहिये। हमारे केवल संस्कृत के पण्डितों में भी ऐसे लोग इने गिने ही होंगे कि जो हमारे शृङ्गार-दीक्षागुरु कालिदास की कृति के अमरत्व का यथार्थ कारण जानते होंगे। इसका कारण प्रायः उक्त लोगों की विचार-शिथिलता कहा जाता है। पर धन्य है हमारे द्वीपान्तर निवासी विद्वज्जनों की जिज्ञासा और विचारचंचलता को, कि जिनके संसर्ग से, आज हमारे यहांके असामान्यप्रतिभाशाली कविवरों के अलौकिक आनन्दप्रद विजृम्भण का यथार्थ ज्ञान हमलोगों को प्राप्त होने लगा है। आज का हमारा समालोच्य ग्रन्थ इसी प्रकार के लोकोत्तर आनन्द का परिचायक है।

"हमारे काव्यप्रेमी पाठकों के लिये यह परम शुभ संवाद है कि, जो लोग गुरुमुख परंपरा से कविता कामिनी के विलास स्वरूप कालिदास के अनूठे काव्य की प्रशंसा सुनते आए हैं, पर उस प्रशंसा का यथातथ्य कारण नहीं जानते हैं,—वे लोग द्विवेदी जी कृत उक्त ग्रन्थ द्वारा अपनी चिरोत्थित जिज्ञासा को सुख से परिपूर्ण कर सकते हैं; अर्थात् इस अनुठे ग्रन्थ द्वारा विज्ञ पाठकों को कविता के सोदाहरण उन उन अत्यन्त आवश्यक गुणों का बोध हो सकता है कि जिनसे संयुक्त होने के कारण भगवती सरस्वती के अंशावतार कालिदास की कविता इस प्रकार आदरास्पद हुई है। साथ ही साथ उदाहरणों के सहित कविता के उन उन हेय दोषों का भी भली भांति ज्ञान होता जाता है कि जिनके योग से, कवि-यश-लोलुप, मन्द एवं पाण्डित्य बल से हठात् अक्षर जोड़ कर कवि बननेवाले लोगों की नीरस, क्लिष्ट तथा शब्दाडम्बरयुक्त, अतः उद्वेगकारिणी, कविता हास्यास्पद होती है।"

वास्तव में द्विवेदी जी ने इस समालोचना को छापकर सबसे बड़ा उपकार तो यह किया है कि हिन्दी पढ़नेवालों को इस बात से सचेत कर दिया कि लाला सीताराम के अनुवाद में कालिदास की कविता का आनन्द नहीं प्राप्त हो सकता और उन्हें उचित नहीं है कि बिना मूल कविता के पढ़े अनुवाद के आशय पर विश्वविख्यात रससिद्ध कविचूड़ामणि कालिदास की अद्भुत अलौकिक कविता पर अपनी सम्मति प्रकाशित करें।

***

मराठी भाषा से अनुवादित "प्रणयिमाधव" नाम के उपन्यास की एक प्रति हमें अनुवादक पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री से प्राप्त हुई है जिसे हम सहर्ष स्वीकार करते हैं। हिन्दी में आज कल उपन्यास विशेष रूप से निकल रहे हैं, परन्तु यह उनमें का नहीं है। आज कल के साधारण उपन्यासों में तिलस्म की ही भरमार रहती है और वे इस प्रकार की भाषा में लिखे जाते हैं कि कोई पढ़ा लिखा विचारवान मनुष्य उन्हें अपनी माता, स्त्री अथवा कन्या के हाथ तक पहुंचाने में भी पाप समझेगा। औरों को जाने दीजिए स्वयं लेखक महाशय भी कदाचित ऐसा करने का साहस न करेंगे। परन्तु प्रणयिमाधव में इन अवगुणों का पूर्ण अभाव है। अनुवादक महाशय स्वयं लिखते हैं कि "इसमें यद्यपि ऐयारों की ऐयारी तथा तिलस्म की ऊटपटांग लीला का वर्णन नहीं है, तथापि हम आशा करते हैं कि इसमें जो कुछ है सो हमारे करुणारस-प्रधान नाटक प्रणेता भवभूति प्रणीत सुविख्यात् 'मालतीमाधव" नामक नाटक के आधार पर लिखे जाने के कारण सरसचेता पाठकों के चित्त में रस का आविर्भाव करने के लिये अलम् है।" मालती का चरित्र जैसा इस उपन्यास में लिखा

गया है, वह आदर्श बनाने योग्य है। सुअवसर मिलने पर भी अपनी इच्छा होने पर, सहवर्गियों की सम्मति होने पर, जिस कन्या ने अपने माता पिता की आज्ञा बिना अपना परिणय नहीं किया और उसके बदले असह्य मानसिक व्यथा सहन की, वह कन्या यदि आदर्श स्वरूप न मानी जायगी तो और कौन ऐसी हो सकती है जिसे हम ऐसा समझ सकते हैं। हमारी सम्मति में यह पुस्तक बालिकाओं के पढ़ने योग्य है।

यह पुस्तक बम्बई के लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर प्रेस से छपकर प्रकाशित हुई है, इसी कारण से इसका प्रूफ भली भांति नहीं शोधा गया है और इसमें भाषा और व्याकरण की अशुद्धियां रह गई हैं।

* * *

फिरोज़पुर के अनाथालय की एक रिपोर्ट हमें प्राप्त हुई है। गत अकाल के समय पञ्जाब के आर्य्य-समाज नें जो देशहितकर काम किया, उसे देख कर लम्बी लम्बी बातें बनानेवालों को लज्जित होना चाहिए। ठीक परीक्षा के समय परीक्षा छोड़, सब प्रकार के कष्ट उठाकर वैदिक कालिज के विद्यार्थियों ने अकालपीड़ित प्रान्तों में यात्रा कर अनाथ मातृ-पितृ-विहीन बालक और बालिकाओं की रक्षा की, और उन्हें, जैसा कि नवम्बर की सरस्वती में पण्डित रामनारायण मिश्र लिख चुके हैं, मिस्टर स्मिथ और सैय्यद अली होने से बचाया,—सनातनधर्म्मावलम्बिओ, भारत धर्म्ममहामण्डल के पक्षपातिओ, भारतहितैषिओ, बताओ तुमने भी इन दीनों बालकों के लिये कुछ किया अथवा अब भी कुछ करने की इच्छा रखते हो? हा! हमारा देश दानशील है; हम दानी कहलाते हैं और इसके अभिमान में फूले नहीं समाते; पर वास्तव में हम कैसे हो रहे हैं, हमारे देश के बिचारे अनाथ बालक भूख के मारे मर जांय, सर्दी में कपड़े बिना ठिठुर जायं, पर हमें अपनी बिदाई से, अपनी वाह वाही से, अपने स्वार्थरत कार्य्यों से प्रयोजन है; वे मरें चाहे जीएं, अवसर पड़ने पर, कुछ कमा खाने का सुबीता होने पर, हम भी बड़ी बड़ी मीटिंगों में इनके नाम आंसू टपका लेंगे। हा! जिस समय हम उन अनाथ बालक बालिकाओं के अस्थिपञ्जर मात्र शरीर को, उनकी मन्द अवस्था को, उनकी शक्तिहीनता को और उनके करुणोत्पादक सूखे मुर्झाए तथा मृतवत् मुख को देखते हैं, तो हमें नैराश्य आ घेरता है और हम रोमाञ्चित हो विह्वल हो जाते हैं। ईश्वर, दयामय ईश्वर, दीननाथ! तेरे कौनसे ऐसे अपराध हमने किए हैं जो हमारे देश की यह दशा हो और हमारे देश के धनी दानी अपनी घोर-निन्द्रा से न जागें! ऐसे दीन बालकों की जिन्होंने रक्षा की है, उनका सारा देश चिरकृतज्ञ बना रहेगा; परन्तु कृतज्ञता से काम नहीं चल सकता। इन परोपकारी लोगों की सहायता करना हमारा परम धर्म होना चाहिए। हम अपने पाठकों से सानुनय प्रार्थना करते हैं कि वे इन बालकों की सुध लें और जो कुछ उनसे बन पड़े, इनकी सहायता में भेजें। एक सप्ताह तक हम सुगमता से कोई एक व्यसन छोड़ सकते हैं। उससे जो बचत हो, वही इन अनाथ दीन जीवों के लिये बहुत होगी। हमें यह जानकर परम सन्तोष होगा कि हमारी प्रार्थना वृथा नहीं हुई है। दानियों को अपना दान लाला लाजपतराय, वकील, चीफ़कोर्ट, लाहौर, के पास भेजना चाहिए और अनाथालय की पूरी रिपोर्ट मंगाकर देखना चाहिए कि उन्होंने अब तक क्या किया है और उन्हें अब किन किन बातों का अभाव है।

दुष्यन्त के प्रति शकुन्तला का प्रेमपत्र

[रोला]

तव चरननि में नमति सीस बनवासिनि दासी।
जदपि बिसारयौ नाथ ताहि तुम हूँ बिस्वासी॥

भूलि सकति नहिँ तऊ अभागिनि कबहु आपकों ।
नाम आपको जपति नसावन हेतु ताप कों ॥१॥

हाय बिवस आसामद में ह्वै मैं उनमादिनि ।
हेरौं धूलाराशि नाथ जब नभपथगामिनि ॥
पवन सब्द जब सुनौं दूर के कोऊ बन में ।
तबहि चौंकि कै करन भावना लागौं मन में ॥२॥

सङ्ग पदातिक मत्त करी बहु रतन सजित तन ।
बाजी राजी सुरथ सारथी दास दासि गन ॥
आवत आश्रम बीच मनो परि आसा के छल ।
प्रियम्वदा अनसूया को बुलवाइ लाइ गल ॥३॥

कहति दुहू सों हुलसि सखी बीते इतने दिन ।
सुमिरन कीन्यौ आज अरी निज दासी को तिन ॥
वह देखो उड़ि धूल राशि छायी अकास में ।
सुनहु कोलाहल पुरवासी आवत निवास में ॥४॥

मोहि लै जैवे हेत आज प्रानेस हुकुम सों ।
विदा होइहौं अबै सखी सुनु सांचे तुमसों ॥
देखि दसा यह प्रियम्वदा अनसूया रोवति ।
धाय लाइ गल भरि उसास मेरो मुख जोवति ॥५॥

तह निकुञ्ज बन मांहि सीघ्र धावौं द्रुत गति सों ।
पूज्यौ पदजुग नाथ जहां पहिले निज मति सों ॥
हेरौं चहुं दिस व्यग्रभाव सों फूल प्रफुल्लित ।
सुनौं मधुर पिकगान लखौं लतिकागन प्रसरित ॥६॥

अलि गुञ्जन नदि नाद सुनौं मर्मर पातन को ।
ररे परेवा बैठि ऊपरे तरु साखन को ॥
करत प्रेम आलाप कपोतिनि सङ्ग मौज सों ।
चोंच चोंच सों लाइ चाव चढ़ि चारु चोज सों ॥७॥

निदरि सुमन सन कहौं "अरी कुञ्जनि की सोभा ।
केहि कारन तू करत हंसी लखि मम मन छोभा ?
क्यों बरसत है आज सुधापरिमल, समीर कों ?"
कहौं पिकहिं-"सुनु कोकिल क्यों नहि धरत धीर कों?

क्यों तू गावत तान स्रोत बरसत क्यों बन में ?
कौन सोक के काल मोद धुनि करत मगन में ?
तुम ऋतुराज अधीन सखा वह अहै मदन को ।
होत मदन सों मुग्ध जासु लखि रूप गुनन को ॥९॥

गावत लहि सुख कहा कहो ताके वियोग में ?"
सुनि अलि के गुञ्जार भावना करौं सोग में ॥
मृदु स्वर सों दुखनी के दुख सों देवी बन की ।
रोवति है-सुनि नदीनाद यह बात मनन को ॥१०॥

निन्दत हैं वनदेव तुम्हें कछु बोलि गंभीरा ।
भय सों कांपौं नृपति पाइ मन में अति पीरा ॥
सोचत जौ वे देहिं कोपवस साप आपकों ।
तब हा ह्वै है कहा सुमिरि पावति संताप कों ॥११॥

कहति पत्र सों "सुनहु पत्र तोहि लखे सरस तन ।
नाचत तुअ संग आई प्रेम सों पौन मुदित मन ॥
पै जब जाहु सुखाइ कालवस तबहि घृना करि ।
तुरतहिं तोहि उड़ाइ देत है हाय दूर धरि" ॥१२॥

त्योंहीं कहा भुआल तज्यो एहि दासिहिं बन में ।
इहि विधि नाथ अनेक भावना आनौ मन में ॥
मूंदि जरे ये नैन बैठि कै मैं रसालतल ।
बहुरि भावना करौं भ्रान्तिमद मातिं पलहिं पल ॥

पैहौं दरसन चरनपद्म को शीघ्र तिहारे ।
यह बिचारि मढ़ि मोद होत हिय कम्प हमारे ॥
सुनौं जहां पद शब्द नैन खोलौं हुलास सों ।
हेरि कुरङ्गिनि निकट, हाय, रोवौं हतास सों ॥१४॥

गारी दै कै दूरि करौं तेहि कराघात सों ।
ऊंचे अलिहिं पुकारि कहौं अति विनय बात सों ॥
'अहो सिलीमुख मोहि आक्रमण करहु आय करि ।
गूंज अभागी अधर हमारो एक बार फिरि ॥१५॥

दासी के रक्षार्थ अचानक पुरुकुल राजा ।
दैहैं दर्सन आय साधिहैं मेरो काजा" ॥
किन्तु पुकारौं वृथा नाथ ! मैं ताहि छोभ सों ।
मधुलोभी अलि अबै धाइ हैं कौन लोभ सों ॥१६॥

इहि आनन को निरखि गयो रस सूखि जाहि को ।
फूल सुखाये कबै आदरत कौन ताहिको ॥
रोइ प्रवेसौं सोइ लतामण्डप में प्रभुवर ।
जहां, बिचारो भूप, होइ सुमिरन यदि अवसर ॥

जहां बैठि कै लिखौं गीतिका यह हतभागिनि ।
कमल दलन पै, जहां अचानक आप नृपति मनि ॥

आइ जुडायो विषम बिरह को दुख सब मेरो ।
पद्मपत्र दै नित कितने क्या लिखैां घनेरो ॥१८॥

कैसे कहिहैं कौन भांति सोइ हाय रोय कै ।
कबहुं पवन कें कहैं अञ्जलीबद्ध होय कै—
"वायुराज ! यह लेख हमारो दै उड़ाय कै ।
फेकु राजपद तले दया अपनी दिखाय कै ॥१९॥

जहां विराजैं नृपति सङ्ग में राजासन पै ।
मेरो जीवन प्राननाथ, सिरमैार नृपन पै" ॥
ह्वै अनमनी कहैं कबहूं करि मृगिहिं सँबोधन ।
"हरिनि ! मनोरथ गती तोहि विधि दीन्ही भावन ॥

जाहु जहां प्रानेश बेगि लै लेख हमारो ।
विरह बिथा बाढ़ रही कैान विधि धीरज धारों ॥
पाल्यैा सैसव मांहि जतन सों तोहि हिये धरि ।
अहो बचाअेा अधम प्रान यह आज कृपा करि"२१

अैार कहा अब कहैं, कहैं तो सुनहिं कौन जन ।
देखहु भूए विचारि होइ जैा कछु सुमिरन मन ॥
अनसूया अरु प्रियम्वदा सखि बिन कोउ नाहीं ।
जानत मम दुख हाय इहां निर्जन बन माहीं ॥२२॥

यदि आवत यह दोउ सखी मेरे ढिग कबहीं ।
पोछैं आंसूधार निम्न कारन सो तबहीं ॥
देति तुम्हें अपबाद मन्द भाषत भूपाला ।
देखि विवस अति मोहि कोपकरि कै ऋषिबाला२३

तव निन्दा प्रभु मोहि बज्र सम लागै हिय में ।
कढ़ै न मुख सों बैन रोष दाहै रुकि जिय में ॥
अैार अैार थल हैं जितने सब ठैार जायकै ।
रोय रोय कै करैां भ्रमन, दुख तहां पायकै ॥२४॥

अेाहि तरुतल गन्धर्व ब्याह विधि जहं प्रभु कीन्ही
छलि मन मेरो मोहि बनाय निज दासी लीन्ही ॥
अेाहि निकुञ्ज में जहां साजि दासी फुलसज्जा ।
प्रथम समागम कियो चापि पद तजि सब लज्जा !

करि नहिं सकत बखान होत जो भाव हमारो ।
कहा हिये में मोर उदय, (तुम आप विचारो) ॥
अेाहि निकुञ्ज में जांउ ज्वै अति ब्याकुल मन में ।
सान्ति पाइवे हेत, तहां प्रभु एकहु छन मैं ॥ २६ ॥

हाय विधाता ! तेरे मन में यही फव्यैा क्या ?
प्रेमवृक्ष के साखन में फल यही फल्यैा क्या ?
याही विधि प्रति द्यौस अनाथिनि मैं, पिय प्यारे !
भ्रमन करैां ; तुम कछू कष्ट जानत न हमारे ॥२७॥

पितृस्वसा गैातमी तापसी वृद्धा मेरी ।
भाग्य यही सुधि रहै तासु जप तपसों घेरी ॥
नहि तो होतो सर्वनाश निहचै कोऊ दिन ।
लखि मेरी यह दशा शाप तोहि देती अनंगिन ॥२८॥

नहि अब इच्छा केस बांधिवे फूल रतन सों ।
बेनी गुहैां बनाय चारु मैं परम जतन सों ॥
मैले बल्कल पहिरि आवरों मलिन अङ्ग कें ।
अन्न मांहि रुचि नांहि तज्यैा सब राग रङ्ग कें ॥२९॥

नहि जानैां मैं कहैं कैानसी बात कैानकें ।
हाय सून्य मन ह्वै विषाद में स्वांस पैान कें ॥
छाड़ि, विकल ह्वै घूमि झूमि पुनि भूमि पड़ति मैं ।
होत रंच सुधि, नाथ ! सामुहें तुमहि लखति मैं ३०

ह्वै असङ्क तब अङ्क भरन कें भुजनि बढ़ावों ।
चरनकमल पर सीस धरन हित आतुर धावों ॥
तुव पद परस न पाय रोय मैं हा हा रव सों ।
नाथ सहैां सन्ताप नित्य बिछुरे तुम जब सों ॥३१॥

कैान कहेगो, कैान पाप सों यह बिड़म्बना ।
सहैां; विधाता कैान पाप सों करैं पीड़ना ॥
पूछैां मैं यह बात कैान सों कहां जाय कै ।
कोऊ नहिं लखि परै मोंहिं जो दे बतायकै ॥३२॥

जगविरामदायिनि निद्रा जैा कबहिं कृपा करि ।
लेति मोहिं दुख हाइनि कें निज सुखद अङ्क भरि
देखैां सपन अनेक नाथ तो पैं तिहि अैासर ।
तिनको करैां बखान कैान विधि सों मैं कातर ३३

हेम रचित मनि खचित राजप्रासाद मनोहर ।
गजरद निर्मित द्वार लखैां द्वारी अरु करिवर ॥
ठैार ठैार में सुमन सेज सुवरनमय आसन ।
दासी विद्याधरी गंजिनी घिरि चहुं पासन ॥३४॥

नाचति गावति कोउ कोउ लै जोवति भूपन ।
कोऊ लावत राज भोग बहु भांति अदूषन ॥

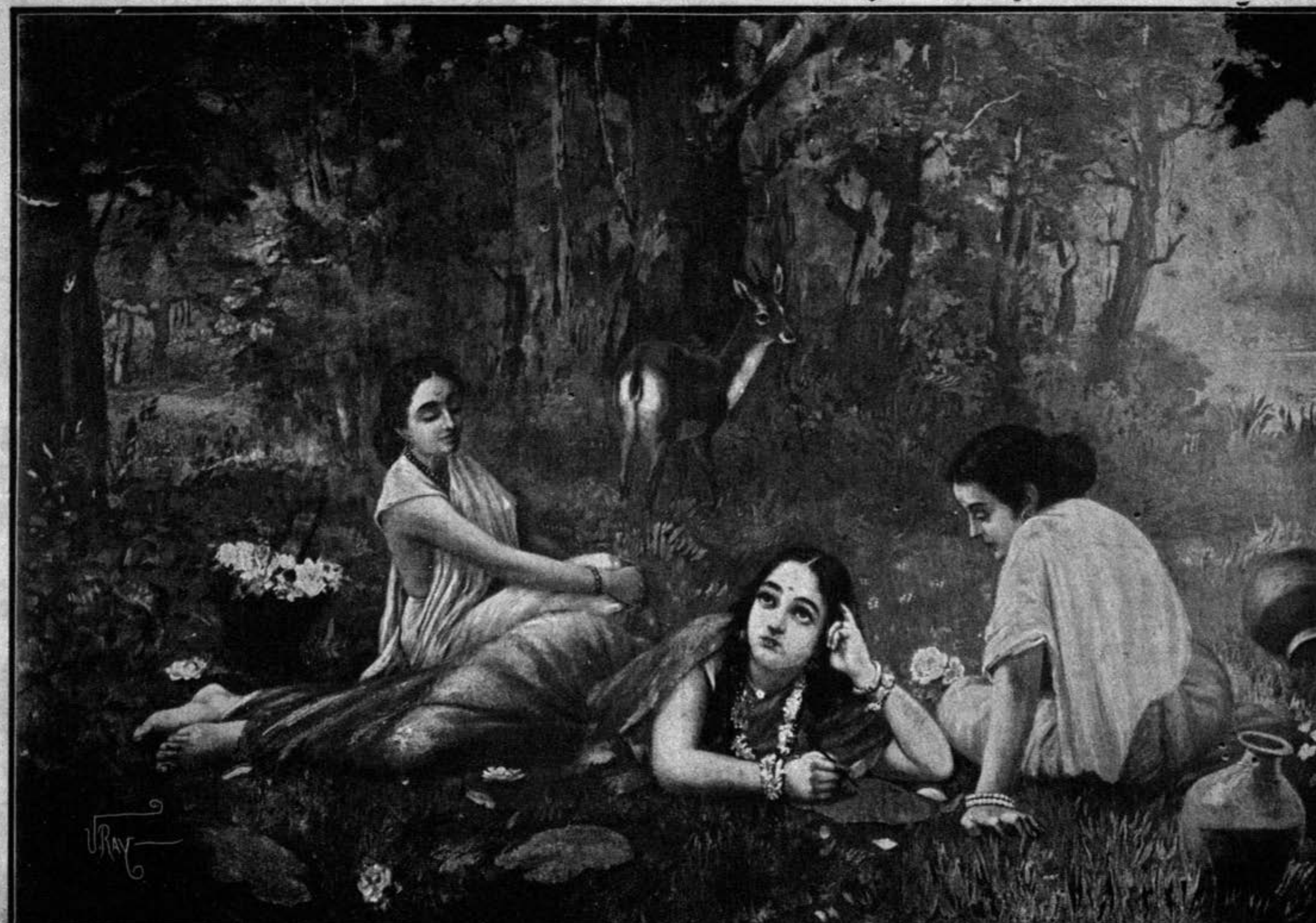

राजा रविवर्माकृत शकुन्तला-पत्रलेखन

मनि मुक्तन की रासि रासि देखौं मैं ढेरी।
जच्छराज गृह मांहि रहै जैसे बहुतेरी ॥ ३५ ॥

सुने बोन धुनि हाय केलि आनद उपवन में।
होत मत्त मन मोर पाय सौरभ अति तन में ॥
जिमि बसन्त में नन्दन बन में होत सुनी मैं।
तात कण्व मुख सों यह बानो सत्य गिनी मैं ॥३६॥

देखैां तुम्हें नरेन्द्र स्वर्ण सिंहासन ऊपर।
सिर पै सोहंत राजछत्र नृपदण्ड लसै कर ॥
मण्डित बहु अनमोल रतन सों; धरा ससागर।
राजिव पदतल परति हाथ में लिये राजकर ॥३७॥

कितने रोवैां जागि, नाथ सो कासों कहिहैां।
बिषम बिरह की बिथा कहां लों मन में सहिहैां
जानति दासी हैं नरेन्द्र देवेन्द्र समाना।
सम्पति महिमा अहै तिहारी कृपानिधाना ॥३८॥

तुम जग में हो अद्वितीय कुल मान धनन में।
गिनैां राजकुल छत्रपती तोहि राजागन में ॥
किन्तु करै नहिं लोभ कछु दासी यह धन को।
केवल सेवन चहै नाथ तुम जुगल चरन को ॥३९॥

नाथ यही इक लोभ अहै चिर आस जीय की।
सत्य कहैां प्रानेस कथा निज जरे हीय की ॥
मैं बनवासिनि नारि नित्य फलमूल अहारिनि।
कुस आसन सायनी तथा बलकल पट धारिनि ४०

कैान काज है मोहि राजसुख राजभोग सों।
यह इच्छा इक सोइ तुम्हैं मैं बचैां सोग सों ॥
करति केलि विधु सङ्ग रोहिनी नित अकास में।
सेवति भू पैं ताहि कुमुदिनी खड़ी आस में ॥४१॥

दासी मोहिं बनाय, नाथ, राखहु निज पदतल।
पैहो अति सुख तबहि बहैहैां मोद अस्रु जल ॥
सैसव में तजि दियो मातु मोहिं कैान पाप सों।
नहि जानैां मैं; चिर अभागिनी भरी ताप सों ॥४२॥

पर अन्नन सों बच्यैा प्रान मम परपालन सों।
नवजोबन सुख लियो लूटि पुनि तुम ख्यालन सों ॥
कैान दोष सों कहो, नाथ! अपराधिनि दासी।
सकुन्तला तेरे पद मैं अबला बनबासी ॥४३॥

सुख पच्छी मन मांहि कियो जो हुतो बसेरो।
ताहि व्याध बनि बध्यो कैान यह न्याव निबेरो ॥
अजित बाहुबल सुन्यौ प्रतापी श्रेष्ठतर।
सूर सिरोमनि आप जगत विख्यात नृपतिवर ४४

कहो यसस्वी हाय कैान जस उमहयौ तेरो ?
(दासी अबला नारि) हरन कै सुख कों मेरो ॥
तात कण्व बन मांहि आइहैं, नाथ! जबै फिरि।
कहिहै दासी कहा ताहि सों कहो कृपा करि ४५

अनसूया जब तुम्हें बिनिन्दहि मन्द कथा कहि।
प्रियम्वदा अपवाद देहि जब तुम्हें कोप लहि ॥
कहा बोलि यह दासी दोउन कों समुझावै।
कहो नाथ मोहि सोइ कैान सी बात बनावै ॥४६॥

कहा बोधि एहि जरे प्रान कों तोषैां प्यारे।
कहो; करै मिनती दासो गहि चरन तिहारे ॥
बनबासी नरराज पुरी अरु राज सभा मंह।
नहिं जानत परवेस कैान विधि सों करिहैां तहं ४७

पै जलधारा मांहि सुनी है डूबत जोजन।
धरत तृनहिं यदि और कछु नहिं मिलै ताहि छन ॥
कैान सहज में तजत हाय आसा जीवन की।
करहु कृपा प्रानेस कहत दासी निज मन की ॥४८॥

जैां अज्ञानबस कियो कछु मैं भारी दोषा।
उचित नहीं प्रानेस आपको करिवो रोषा ॥
छमा श्रेष्ठतम अहै भूप के सब गुनगन में।
दासी कों तेहि हेतु छमा करि लेहु सरन में ॥४९॥

गर्भवती बिकला अबला मैं तुमहिं पुकारैां।
हे जीवन-आधार भूपवर! मोहिं उबारो ॥
निज सेवक कों नाथ दया करि इतै पठावहु।
अपनी दासी सकुन्तला कों बेगि बुलावहु ॥ ५० ॥

जीवनाग्नि

[२]

दूसरे दिन मैं दलपति के साथ रानी के दर्शन को चला। बहुत सी छोटी छोटी गलियों और छोटी बड़ी कोठरियों में घुमते हुए

हमलोग एक बड़े से गृह के सामने आ खड़े हुए। द्वार पर एक द्वारपाल खड़ा था, वह भीतर गया और तुरन्त लैाट कर हमलोगों के। भीतर ले चला। सच पूछिए ते। मेरा कलेजा कांप रहा था, पल भर के लिये मेरे हृदय में भय समा गया। परन्तु मैं ढाढ़स बांधकर भीतर घुसा।

देखा, वहां कोई नहीं था। एक दूसरी कोठरी में जाने के लिये द्वार पर एक पर्दा पड़ा हुआ था। बूढ़े दलपति ने मेरा हाथ पकड़ कर कहा 'रानी जी उस कोठरी में हैं,' और वह भूमि पर हाथ और पैर रखकर चतुष्पद की भांति भीतर घुसा, परन्तु मैं सीधा ही चला गया। अन्दर जाकर मैंने देखा, कि एक तखत पर एक स्त्री बैठी है, सिर से पैर तक श्वेत वस्त्रों से उसका शरीर ढका है, परन्तु वस्त्रों के भीतर से उसके लम्बे लम्बे केश चारों ओर शोभा फैला रहे हैं। उसने हाथ उठा कर हमारी अभ्यर्थना की। उतने ही में जो कुछ मैंने देखा वैसा रूप पहिले कभी नहीं देखा था। उसकी सुन्दरता ऐसी चटकदार थी कि देखकर मेरे मन में भय का संचार होने लगा। मेरे पैर कांपने लगे, माने। घुटनों के। टेक कर उसके सम्मुख बैठ जाने के। मेरा हृदय व्याकुल हो रहा था। ऐसे समय मधुर वीणा की झङ्कार के सदृस स्वर से हिन्दी भाषा में वह बोली "विदेशी, डरते क्यों हो?" मनुष्यकण्ठ से ऐसा मधुर स्वर मैंने पहिले कभी नहीं सुना था। वीणा, जलतरङ्ग, पियानो, आदि अनेक मधुर बाजे मैंने सुने थे, किन्तु उनमें ऐसा मीठापन, ऐसी हृदयोन्मादिनी मुग्धकारिणी शक्ति नहीं थी। मैं क्या उत्तर दूं मुझे नहीं सूझा। हृदय की रास भर सक खींचकर केवल यही बोल सका—"महाराज्ञी! आपके अलोकसामान्य अनिर्वचनीय रूप ने मुझे मुग्ध कर दिया है। मेरे अन्तःकरण में डर समा गया है।"

रानी ने हँसकर कहा—"जान पड़ता है कि अब भी पुरुष पहिले की नाई स्त्रियों की वृथा बड़ाई किया करते हैं। चलो, कुछ हानि नहीं, तुम्हारी बातों से मैं प्रसन्न हुं। आओ, यहां बैठो।"

मेरे सिर में तो घुमरी आ रही थी। नाना भांति की चिन्ताएं मेरे अन्तःकरण के। समुद्र की लहरों की भांति आलोड़ित कर रही थीं, मैं बार बार सोच रहा था कि "क्या धनपतिराय की कथा सत्य है? क्या यही वह स्त्री है?" जब मैं इस चिन्तासागर में डूब रहा था, उस समय रानी हमारे संगी दलपति के साथ कुछ बातें कर रही थी। पीछे उसने उसके। विदा कर मुझसे कहा "बहुत दिने। से बाह्य जगत् से मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं है, बहुत दिनों से मैंने वहां का कोई समाचार नहीं सुना है; बैठिए, आपसे कुछ सुन लूं"।

मैंने कहा "मैं महारानी जी की आज्ञा यथासम्भव पालन करूंगा"।

रानी—मैंने सुना था कि बुद्धावतार होने वाला है। बुद्ध ने जन्म ले लिया?

इस प्रश्न के। सुनकर मेरा हृदय भीतरी हृदय के भी भीतर धँस गया। आज सहस्रों वर्ष की कथा यह स्त्री किस ढंग से पूछ रही है? बड़ी व्याकुलता से उसकी ओर देखकर मैंने कहा "महारानी! आज २००० वर्ष से भी ऊपर की बात है कि बुद्धदेव ने जन्म लिया था और राजपाट सब छोड़ कर सन्यास ले धर्म्म संचार किया था। इस धर्म्म का आजदिन इतना प्रताप है कि चीन जापान ब्रह्मा इत्यादि सब देशों में इसीका प्रचार है। भूमण्डल के निवासियों में प्रति सैकड़े में से चालीस मनुष्य इस धर्म्म के। मानते हैं"।

"तो क्या भारतवर्ष में अब हिन्दू नहीं हैं।"

"जी, ऐसा नहीं। बैाद्ध धर्म्म का बहुत दिनों तक भारतवर्ष में बड़ा प्रताप रहा; परन्तु पीछे से ब्राह्मणों का सनातन धर्म्म ही प्रबल हो गया, और यद्यपि मुसलमान, ईसाई आदि बहुत से विधर्म्मी राजाओं ने आकर काल पाकर अपना अपना शासन विस्तार करने से हिन्दुधर्म्म को फिर

बहुत कुछ हानि हुई, परन्तु भारतवर्ष में अब भी हिन्दुओं ही की संख्या सबसे अधिक है।

रानी फिर मुझसे मगधराज्य का समाचार पूछने लगी। मैंने भी जहां तक बन पड़ा उसके प्रश्नों का उत्तर दिया। परन्तु धीरे धीरे मेरे मन से जब भय दूर हो गया, तो बड़ी ढिठाई से मैंने उस का परिचय पूछा।

उसने मुसकरा कर उत्तर दिया कि दो सहस्र वर्ष से भी पहिले मैंने इसी करकर नगर में जन्मग्रहण किया था और मैं धूमकेतु नामक एक पुरुष की प्रेयसी थी। मेरा नाम अश्वगन्धा है। मेरेही समान लघुमाया नाम की एक अनार्य्य, कन्या भी धूमकेतु की प्रेमभागिनी थी। इस कारण ईर्षावश होकर मैंने अपने हाथों से धूमकेतु का नाश कर दिया था और उसी दिन से आज तक धूमकेतु की राह जोहते हुए इस गुफा में मैंने दो सहस्र वर्ष व्यतीत कर दिए हैं। धूमकेतु किसी न किसी समय फिर पृथ्वीतल पर जन्म लेगा और तब फिर आकर मुझ से मिलेगा।

इस गुफा के नीचे जीवनाग्नि रात दिन सुलग रही है। और जो कोई एक बार उस अग्नि में स्नान करता है, वह अश्वगन्धा के समान अमर हो जाता है।

इन सब बातों पर मुझे दूसरी अवस्था में कदापि विश्वास न होता, परन्तु जब मुझे अपने मित्र धनपति राय के पत्र का स्मरण हुआ तो सब घटना ठीक ही जान पड़ने लगी। मैं आश्चर्य से स्तम्भित और भय प्राप्त होकर रानी से विदा हुआ। आते समय उसे रञ्जन की कथा कहना नहीं भूला; मैंने कहा "महारानी, आपकी क्षमता असीम है, मेरा साथी बहुत बीमार है, आप ओषधि देकर उसको प्राण रक्षा कीजिए।"

रानी ने चौंककर कहा, "क्या यह तुम्हारा पुत्र है?"

मैंने उत्तर दिया "नहीं, उसका पिता मेरा परम मित्र था।"

रानी ने कहा कि "अच्छा आज संध्या के समय मैं उसे देखने जाऊंगी।"

मैं रञ्जन की कोठरी में लौट आया। नीरा उसकी ऐसी सेवा कर रही थी, मानो अपने पति के लिये अपना प्राण तक निछावर करने को वह तैयार है। परन्तु रञ्जन का स्वरूप देखकर मुझे बड़ा भय हुआ। मैंने उसके शरीर पर हाथ रक्खा तो जान पड़ा मानो अग्निशिखा निकल रही थी; वह अचेत पड़ा था, पीड़ा उसकी बहुत कठिन जान पड़ी। अब इसमें कुछ सन्देह न रहा कि उसका जीवन सङ्कट में पड़ा है। मेरे दोनों नेत्रों से आंसू के प्रवाह निकलने लगे। मुझे रोते देख नीरा ने बड़ी व्याकुलता से पूछा "क्या ये अब अच्छे नहीं होंगे?"

मैं क्या करूं; उसका मुख देख कर मेरा हृदय फटने लगा। मैंने कहा "अच्छे क्यों नहीं होंगे। नीरा, कोई डर नहीं है।"

सन्ध्या होते होते रञ्जन के प्राण की आशा मैंने बिलकुल छोड़ दी। मैंने समझ लिया कि उसके मरण का समय आ पहुंचा। उसका चेहरा फीका पड़ गया था, सांस बहुत धीरे धीरे चल रही थी, आंखें खुली हुई थीं। नेत्रों की पुतलियां नक्षत्रों के समान चमक और चक्र के समान घूम रही थीं। मृत्यु के पूर्ववर्त्ती सब लक्षण एक एक करके आ पहुंचे। हाय, इस दूर देश में क्या मैं उसे इस जङ्गल में विसर्ज्जन करने के लिये इतना कष्ट उठाकर अपने देश से आया था?

और अश्वगन्धा? अश्वगन्धा कहां गई? क्या वह मृत शरीर में प्राण लौटाने को समर्थ है? क्या सब यत्न, सब उद्यम, सब चेष्टा विफल हो जायगी? नीरा उन्मादिनी के समान कभी रञ्जन के हृदय से लपट जाती, कभी उसका मुख चूमती और कभी मेरे पैरों को पकड़ आर्त्त स्वर से पूछती "आप इनकी प्राण रक्षा कीजिए। ये बोलते क्यों नहीं हैं?" मैं क्या कह सकता था। उसके साथ साथ मैं भी बड़ा विकल होने लगा।

ऐसे समय अकस्मात् कोठरी में उजाला भर गया। हम लोग सब चौंक पड़े, देखा कि महारानी खड़ी हैं। वह टकटकी बांधकर रञ्जन को देख रही थी, मानो आंखों में पलक ही नहीं थे,—सारा शरीर उसका निष्पन्द, मानो केश से पदाङ्गुलि तक सब पत्थर हो गया था। मैं उस समय रञ्जन की दशा देखकर उन्मत्त हो गया था, बोल उठा, "रानी, यदि इसके प्राण बचा लेने की सामर्थ्य आपमें हो तो इसको रक्षा कीजिए, और देर मत कीजिए। क्या आप नहीं देखती हैं कि यह मरने ही पर है।"

मेरी बात सुनकर मानो उसे चैतन्य हुआ। चौंककर बोली "विदेशी! तुमने मेरा सर्वनाश कर डाला। तुमने ये संवाद मुझे पहिले क्यों नहीं दिया था? हाय, हाय, जिसकी बाट देखते देखते मुझे दो सहस्र वर्ष बीत गए, उसे पाकर भी मैं खो बैठी हूँ"। फिर वह रञ्जन के पास बैठ कर कातरता से बोलने लगी, "धूमकेतु, प्यारे धूमकेतु, तुम्हारी अश्वगन्धा तुम्हें पुकार रही है, नेत्र खोल कर देखो।"

मैंने सोचा यह स्त्री निश्चय पागल हो गई है। नहीं तो मृतप्राय रञ्जन को धूमकेतु कहकर नहीं पुकारती। मैं भूल गया कि वह वहां की रानी है। ज़ोर से उसका हाथ पकड़ कर मैंने उसे एक झटका दिया और कहा "आप नहीं देखती हैं कि यह युवा मर रहा है। यदि यही सचमुच आपका धूमकेतु है तो इसके प्राण बचालेने की चेष्टा कीजिए। नहीं तो झूठमूठ रोकर सारा भूमण्डल बहा देने से भी धूमकेतु नहीं लौटेगा"।

मेरी बातों से मानो उसका ज्ञानोदय हुआ। वह चौंक कर बोली, 'तुम ठीक कहते हो। क्या मैं पागल हो गई।" यों कह कर उसने अपने वस्त्रों में से एक छोटा सा पात्र निकाला और उसमें जो औषधि थी उसे रञ्जन के मुख में डाल दिया। औषधि से क्या फल हो हम लोग सांस रोककर बड़ी व्यग्रता से देखते रहे। अश्वगन्धा भी बड़ी व्यग्रता से रञ्जन के मुख को देखती रही। देखिए क्या होता है? क्या रञ्जन औषधि के गुण से मृत्युमुख से बच जायगा? क्या इस औषधि से उसे कुछ उपकार पहुंचेगा?

पांच मिनट, दस मिनट, पन्द्रह मिनट इसी भांति शंका में बीत गए। तब जान पड़ा कि उसके मुख पर फिर धीरे धीरे शान्ति विराजित होने का उपक्रम हो रहा है। धीरे धीरे मुख का फीकापन घटने लगा, फिर थोड़ी देर पीछे सांस ज्यों का त्यों चलने लगा। हम लोगों ने जान लिया कि रञ्जन को निद्रा आ गई।

अश्वगन्धा ने तब मेरी ओर लौटकर कहा "अब और कोई डर नहीं है। मेरा धूमकेतु कल दोपहर तक अच्छा हो जायगा"।

मैंने कहा "महारानी, आपके इस अनुग्रह को मैं जीवनभर नहीं भूलूंगा"। इतने में अश्वगन्धा की दृष्टि नीरा पर पड़ी। उसे देख और चौंक कर बोली यह कौन है? मैं क्या कहूं कुछ कह न सका, चुप हो रहा। नीरा भी डर के मारे कुछ न बोल सकी। तब रानी ने उसे हाथ से द्वार दिखा कर कहा "जाओ"।

नीरा मेरे पास हट कर बैठी, परन्तु गृह को त्याग कर नहीं गई। आज तक रानी की आज्ञा पालन न करने का साहस किसीने नहीं किया था, इस कारण बालिका के इस कार्य्य से अश्वगन्धा के नेत्रों से अग्निशिखा निकलने लगी। उसने फिर हाथ उठाकर कहा "जाओ"।

अब नीरा बोल उठी "मैं नहीं जाऊंगी। अपने पति को त्याग कर मैं कभी न जाऊंगी। अरी निठुर रानी! मैं जानती हूं, तू अभी मेरे प्राण ले लेगी। मैं उससे नहीं डरती, परन्तु चाहे जो हो जाय, मैं अपने पति को छोड़ कर कभी नहीं जाऊंगी। मेरा प्रेम उसपर नहीं छूटने का; तुम चाहो तो अभी मुझे मार डालो।"

अश्वगन्धा के शरीर से बिजली छूटने लगी। वह धीरे धीरे नीरा के पास आकर खड़ी हो गई।

फिर द्वार की ओर संकेत कर उसने कहा "फिर कहती हूँ कि चली जा"। नीरा को इतना साहस नहीं हुआ कि रानी की ओर देखे, परन्तु बड़े धीरज से उसने कहा, "आप मुझे मार डालिए, जीते जी मैं अपने पति का साथ नहीं छोड़ूँगी।"

अश्वगन्धा ने नीरा के मस्तक पर अपना हाथ रक्खा। मुझे जान पड़ा माने अकस्मात् आकाश से बिजली ने उतर कर नीरा के सिर को छू लिया—दूसरे ही क्षण में कुम्हलाए हुए पुष्प की भांति नीरा भूमि पर गिर पड़ी। उसके मुख और नेत्र देखकर मैंने जाना कि वह इस लोक को छोड़ कर कहीं और चली गई।

इस डाकिनी व्यापार को देखकर मेरा तालू सूख गया, हृदय की आहट बन्द हो गई, सारा शरीर काठ हो गया। सहसा अश्वगन्धा ने मेरी ओर देख कर कहा "जो मेरे अवाध्य होते हैं उन्हें मैं ऐसाही दण्ड देती हूं। धूमकेतु मेरा है। दूसरी जो कोई उसपर अपना अधिकार जमाने की चेष्टा करेगी, वही मेरे कोप में भस्मीभूत होवेगी। विदेशी! तुमने देखा?"

मैं कुछ उत्तर न दे सका। तब उसने कहा "धूमकेतु का यहां रहना अच्छा नहीं। मैं उसे अभी अपने प्रासाद में लिए जाती हूं"। यों कह कर उसने अपने हाथों से ताली बजाई, देखते देखते चार पांच नौकर वहां आ पहुंचे। अश्वगन्धा ने उनसे कहा "इन्हें हमारे वहां ले चलो"। फिर मुझसे बोली "तुम कभी कभी मुझसे मिला करो"।

नौकर हाथों हाथ रञ्जन को उठा कर ले गए, अश्वगन्धा भी साथ साथ चली गई; मैंने नहीं समझा कि मैं सोता हूं वा जागता, यह सब सच मुच हो रहा है या मैं स्वप्न देखता हूं। अकस्मात् मेरी दृष्टि नीरा की मृतदेह पर पड़ी—मैं घबरा कर बड़े वेग से बाहर चला गया।

रञ्जन की नींद दूसरे दिन टूटी। आश्चर्य औषधि के आश्चर्य गुण से उसके शरीर में अब कुछ दुःख नहीं था। उठते ही उसने नीरा को बुलाया, पर नीरा तो था नहीं।

नीरा के बदले अश्वगन्धा ने पास आकर कहा "आर्यपुत्र! नीरा कौन है? मैं ही आपकी दासी हूं। देखिए, आपके लिये दो सहस्र वर्ष लों आशा लगाकर बैठी हूं। जो इच्छा हो, आज्ञा कीजिए, दासी अपने प्राण तक देकर तुम्हारी आज्ञा पालन करेगी"।

रञ्जन उसकी कथा सुनकर घबराने लगा और चारो ओर देखने लगा। उसने सोचा यह स्त्री निश्चय पागल है। परन्तु अश्वगन्धा के अपरूप रूप ने उसके हृदय को मोह लिया। तब उसने धीरे धीरे कहा "मैं आपको नहीं पहिचानता हूं, नीरा नाम की एक बालिका ने मेरी बहुत सेवा की है, वह कहां गई?"

अश्वगन्धा ने उत्तर दिया "मैंने उसे मारडाला है"।

रञ्जन ने इस संवाद के सुनते ही जेब से पिस्तौल निकाल कर कहा "तू डाइन है, मैं तुझे मार ही डालूंगा"। अश्वगन्धा ने तुरन्त अपनी ओढ़नी उतार कर फेंक दी—उसकी सुन्दरता को देख कर कौन नहीं मोहित होता। रञ्जन के हाथ से पिस्तौल गिर पड़ी, वह मन्त्रमुग्ध की भांति उसकी रूपराशि को देखने लगा—अपने जीवन भर में ऐसी रूपवती को पहिले उसने और नहीं देखा था।

उसका भाव देखकर अश्वगन्धा मृदु मधुर हँसने लगी और बोली, "प्रियतम! धूमकेतु! तुम किसे मारोगे? मैं तो तुम्हारी ही अश्वगन्धा हूं"।

रञ्जन अश्वगन्धा के रूप के सामने, नीरा, जगत्, संसार, सब कुछ भूल गया। अश्वगन्धा के प्रेम-समुद्र में वह डूब गया।

* * *

धनपति राय जो कुछ लिख गए थे, सब देख लिया। अब "जीवनाग्नि" देखनी रह गई। जिस

बात के सोचकर हम पागल का पागलपन समझते थे, आज उसे अपनी आंखों से देख लिया। इस भांति सुख चैन से एक सप्ताह बीत गया। एक दिन अश्वगन्धा ने रञ्जन से कहा "धूमकेतु, मैं तो अमर हूं, परन्तु तुम्हारा मानवी शरीर नाशमान क्षणभंगुर है। कौन जाने फिर किसी दिन तुम्हें खो बैठूंगी। आओ, तुम भी मेरे साथ अमर हो जाओ"।

रञ्जन ने पूछा "कैसे अमर हो सकता हूं?"

अश्वगन्धा ने कहा "उसका उपाय मैं बता दूंगी। इसी स्थान के नीचे भूगर्भ में 'जीवनाग्नि' जल रही है, उसी अग्नि में स्नान करने से मनुष्य अमर हो जाते हैं। मैं रञ्जन की ओर देखने लगा; रञ्जन मेरी ओर देखने लगा। तब मेरे मित्र की कथा प्रलापवाक्य नहीं थी—यह सब सत्य है!

हमलोगों को निरुत्तर देख अश्वगन्धा बोली "प्रियतम! तो क्या तुम मेरी बात को स्वीकार नहीं करते हो?"

रञ्जन ने कहा "प्यारी, तुम्हें छोड़ क्या मैं जी सकता हूं? प्राण रहते मैं तुम्हें नहीं त्याग सकता। हां, मैं इस अग्नि में तुम्हारे लिये कूदूंगा"।

मैंने कहा "मुझे इस अग्नि में स्नान करने की इच्छा नहीं है, परन्तु आज्ञा हो तो आप लोगों के साथ इस अत्याश्चर्य अग्नि को मैं भी देखूं"।

अश्वगन्धा ने मेरी बात मान ली। उसी रात्रि को अग्नि दर्शन की बात ठहर गई।

कुछ रात बीते हमलोग तीनों जन अन्धेरी गुफा के भीतर जाने लगे। उस पथ का वर्णन आवश्यक नहीं है, क्योंकि उस भयानक स्थान का वर्णन हो ही नहीं सकता। अन्त में हमलोग एक ठौर पर पहुंचे। अश्वगन्धा ने कहा "यहीं, इसी ठौर पर ठहर जाओ, अग्नि का दर्शन हो जायगा।"

हमलोग चुपचाप वहां खड़े रहे। थोड़ी देर पीछे एक अद्भुत शब्द सुनाई पड़ा और हमने देखा कि एक बड़ा भारी आग का गोला लुढ़कता आ रहा है। वह धीरे धीरे हमलोगों के पास आया—और पास आया—फिर बिलकुल सामने ही आ पहुंचा। उसके उज्वल तेज से चारो ओर प्रकाशित हो गया। उसके सारे पिंड से सैकड़ों बिजली की शिखाएं लपलपाने लगीं। डर से मेरा हृदय कांपने लगा। परन्तु देखते देखते अग्नि भी लोप हो गई। अश्वगन्धा बोली "अभी फिर आवेगी। प्रियतम तैयार हो जाओ।"

रञ्जन चुपके से खड़ा था। सच तो यों है कि वह भी भयभीत हो गया था। अश्वगन्धा बोली "क्या तुम डर रहे हो?"

रञ्जन ने कहा "प्यारी, मिथ्या कहने से कुछ लाभ नहीं। मुझे सच मुच थोड़ा सा भय हो रहा है। कौन कह सकता है कि मैं इस अग्नि में भस्मीभूत नहीं हो जाऊंगा? अस्तु, तोभी मैं इसमें कूद पड़ूंगा। मैं कापुरुष नहीं हूं"।

अश्वगन्धा—"तुम्हारे भय पाने में अचरज की कोई बात नहीं है। मैं तुम्हारा भय छुड़ा दूंगी। पहिले मैंही इस अग्नि में स्नान करूंगी, तब तुम निडर होकर इसमें प्रवेश कर सकोगे"।

फिर वह शब्द सुन पड़ने लगा। धीरे धीरे वह फिर हमारे समीप आया। फिर वह अग्निमण्डल देख पड़ा, वह फिर हमारे समीप आ गया। तब अश्वगन्धा अपने सब वस्त्र उतार कर सम्पूर्ण नग्नावस्था में अग्नि की मार्ग में जा खड़ी हुई। आहा, उसकी वह शोभा, वह रूप, वह सुन्दरता वर्णनातीत है। जगत में ऐसी मनोहरता न कभी हुई है न होगी। सृष्टिकर्त्ता, तेरी रचना की बलिहारी है!

धीरे धीरे अग्नि उसके समीप आई। तब अश्वगन्धा ने उसे अपने दोनों हाथों से आलिङ्गन किया, फिर उसमें घुस कर डुबकियां मारने लगी। दोनों चिल्लुओं में अग्नि लेले कर अपने सिर पर ढालने लगी, कभी थोड़ा सा मुख में भर कर कुल्ला करने और कभी दूर फेंकने लगी, उसके उन्नत पयोधरों पर अग्नि लुढ़कने लगी, ऐसी सुन्दरता और

ऐसी अद्‌भुत दशा जगत में कभी किसीने नहीं देखी है और न उसके वर्णन की उपयोगी भाषा ही आजतक उत्पन्न हुई है।

फिर ज्वाला धीरे धीरे हट गई। अश्वगन्धा ने दौड़ कर रज्जन का हाथ पकड़ कर कहा। "क्यों प्यारे, अब तुम्हें और कोई भय है?"

परन्तु यह क्या हुआ? क्या हमलोग स्वप्न देख रहे थे या जाग्रत थे? हमारे देखते देखते अश्वगन्धा में एक बड़ा परिवर्तन होने लगा। उसका अपरूप रूप पल भर में लुप्त हो गया—उसके वह केश, वह रङ्ग, वह शोभा, सब देखते देखते कहां चली गई, हम लोग अवाक् स्तम्भित खड़े रहे।

अश्वगन्धा ने भी अपनी दशा जान ली; कहने लगी—"प्यारे, यह क्या हुआ! मुझे आंखों से और सुझाई क्यों नहीं पड़ता, मेरे शरीर का बल क्यों दूर हुआ जाता है?"

हम दोनों नीरव खड़े रहे, जाना कि दो सहस्र वर्ष के बुढ़ापे ने आकर उसे घेर लिया है, और उसकी रक्षा नहीं हो सकती।

अश्वगन्धा देखते देखते डोकरी बुढ़िया हो गई, और थरथराते हुए भूमि पर गिर पड़ी। तब वह बड़ी कातरता से रज्जन से बोलने लगी—"धूमकेतु! प्रियतम! मुझे मत भूलना। मैं फिर वैसी ही सुन्दरी हो जाऊंगी, फिर तुमसे प्रेम करूंगी"।

उसके मुख से और बोली नहीं निकली। हमने देखा कि वह परलोक को सिधारी। जिस अग्नि ने उसे अमर किया था उसीने उसका नाश कर डाला।

हमलोग कब तक चुपचाप खड़े रहे, ठीक नहीं कह सकते। परन्तु जब फिर बोलने की सामर्थ्य हमलोगों को हुई, तब मैंने कहा "रज्जन, अब क्या करोगे?"

रज्जन—"यहां से भागने की चेष्टा करनी चाहिए।"

मैं—"एक बार अग्निपरीक्षा करने से कुछ हानि है? सुना तो कि अश्वगन्धा फिर आवेगी"।

रज्जन—"वह मेरे लिये दो सहस्र वर्ष लों ठहरी रहो सो ठीक है, परन्तु मैं उसके लिये बैठ रहना नहीं चाहता। अब यहां से भाग चलने की राह देखिए"।

अस्तु, ज्यों त्यों कर हमलोग उस कन्दरा से बाहर भाग आए और बूढ़े दलपति की सहायता से प्राण बचा कर, जङ्गलियों के हाथ से बचते हुए समुद्रतीर पर आ पहुंचे। कई दिनों तक आपत्तियां झेलकर एक जहाज़ मिला। वस्त्र हिला हिला कर जहाज़ के यात्रियों से अपना मनोरथ ज्ञात किया, और जब उन्होंने एक नाव भेज दी तो हमारे प्राण बचे। यह जहाज आस्ट्रेलिया की ओर जा रहा था। आगे हमारी कथा आपलोगों को सुनने की रुचि हो तो फिर किसी समय निवेदन करेंगे।*

फ़ोटोग्राफ़ी

[पूर्व प्रकाशित के आगे]

दूसरा प्रकार

प्लेट को जल में भिगा दो १ आउन्स जल में २० ग्रेन आयोडाइड अफ पोटासियम में पुनः प्लेट को १० मिनिट तक भिगा दो।

यदि बहुत पुराना सिलवर का दाग हो तो और भी देरी तक भिगाओ और एक आउन्स जल में ½ ड्राम साइनाइड अफ पोटासियम मिला कर उस प्लेट को डुबा दो और धीरे धीरे रुई से उसे छुड़ाओ। यदि दाग पुराना हो तो उसी अरक में और भी थोड़ा साइनाइड मिला कर थोड़ी देरी तक प्लेट उसमें रख कर जलसे धो कर सुखा लो।

* यह कहानी हैगर्ड साहब रचित एक अंग्रेज़ी उपन्यास के आशय पर लिखी गई है।

धुंधले प्लेट को साफ़ करना।

जो प्लेट धुंधला हो गया हो, तो निम्नलिखित अरक में ५ मिनिट तक प्लेट को भिगा कर पीछे साफ करके जल से धो लो।

क्रोमिक एसिड	... ...	३० ग्रेन
ब्रोमाइड पोटासियम	...	६० ग्रेन
जल	... ...	१० आउन्स

ड्राइ प्लेट का एक दूसरा डेवलपर

इससे भी आलोकचित्र बहुत सुन्दर स्फुटित होता है।

१ नं०	क्रोमिक एसिड	...	५ ग्रेन
	जल	... ...	४ आउन्स
२ नं०	एमोनिया ...	...	१ ड्राम
	जल	... ...	९ ड्राम

एक नम्बर का ४ आउन्स और दो नम्बर के अरक की ३० बूंद मिलाकर प्लेट धोओ, किन्तु एमोनियां की तीस बूंद पहिले न डाल कर क्रमशः तीस बूंद तक मिलाओ। पहिले १० बूंद मिला कर कार्य्य प्रारम्भ करो। यह अरक बनाया हुआ बहुत दिनों तक काम देने योग्य रहता है।

धातु के पत्रादिकों पर चित्र उतारना।

उज्वल धातु के पत्रादि पर चित्र उतारने के पहिले उसकी उज्वलता नष्ट करनी होगी; ऐसा न करने से कहीं तो एक दम सफेद हो जायगा, और कोई स्थान अत्यन्त काला रह जायगा। इस लिये उसपर निम्न लिखित द्रव्य लगा देना बहुत आवश्यकीय है। ह्वाइटलेड, तारपीन तैल, एक में मिला कर उसमें सूखी स्याही मिला कर पीछे जापान का गोल्ड साइज़ मिला कर लगा दो। थोड़ी ही देर में यह सूख जायगा। जब अच्छी तरह सूख जाय तब चित्र उतार कर पुनः तारपीन का तेल लगा लो और पुनः पोंछ कर साफ़ कर लो।

छपे हुए चित्र को कार्ड में चिपकाने के लिये अरक।

इस अरक से चित्र खराब न होगा, वरन अत्यन्त सुन्दर होगा, पर कठिनता के साथ चिपक सकेगा।

जेलेटिन् ...	... ...	४ आउन्स
जल ...	... ...	१६ आउन्स
गिलसरिन ...	... ...	१ आउन्स
मिथिलेटेड स्पिरिट / एलकोहल	...	५ आउन्स

पहिले जेलेटिन को जल में मिला कर पीछे गिलसरिन को मिलाओ और सबके पीछे स्पिरिट को मिला दो।

आलोकचित्रण के शिल्पोश सम्बन्ध के विषय में मोटे मोटे अथवा आवश्यकीय सम्पूर्ण विषय-लिखे गए हैं, और थोड़े आवश्यक ज्ञातव्य विषय आगे परिशिष्ट में लिखे जाते हैं, जिससे आशा है, कि जो शिक्षार्थी इसपर ध्यान देकर कार्य करेगा, वह यथासम्भव कभी धोखा न खायगा।

परिशिष्ट।

१—आलोकचित्रण अथवा फोटग्राफ़ी के सभी काम धीरता से करने चाहिये।

२—पहिले सुन्दर और स्वच्छ "नेगेटिव" के उतारने की चेष्टा करनी चाहिये, क्योंकि यही काम सबसे कठिन है, और प्रिण्ट इत्यादि कार्य्य इससे सुगम हैं। यदि यह किसी व्यवसायी फोटोग्राफर से प्रथम करा लिया जाय तो कोई हानि नहीं है।

३—फोटो उतारने के पहिले लैन्स को साबर से पोंछ कर तथा क्यामरा के अन्दर के गरदे को झाड़ कर तब कार्य्य आरम्भ करना उचित है।

४—प्लेट से भरी हुई स्लाइड सदा कपड़े में लपेट कर रखनी चाहिये।

५—खराब नेगेटिव से अच्छे प्रिण्ट होने की आशा रखनी वृथा है।

६—चित्र उतारने के समय अपने आदर्श पदार्थ के समस्त अंश के फ़ोकस करने का उद्योग करना चाहिये। यदि सम्पूर्ण अंश के फ़ोकस करने में असमर्थ हो, वा किसी कारण विशेष से सम्पूर्ण स्थान का फ़ोकस ठीक न होता हो, तो आदर्श पदार्थ के प्रधान प्रधान अंश का उत्तमत्ता के साथ फ़ोकस करना उचित है। अर्थात् मनुष्य के चित्र में आंख का, बहुत से लोगों के सम्मिलित चित्र में मनुष्यों का और नैसर्गिक चित्र (Landscape) में सामने के पदार्थ (Foreground subject) का फ़ोकस करके तब कैमरे को स्क्रू से अच्छी तरह कस देना चाहिये।

७—परिस्फोटन (Develope) करने के पहिले तथा सब कार्य्य समाप्त हो जाने के पीछे सब डिश और ग्लास को अच्छी तरह धो डालना उचित है।

८—डेवेलप इत्यादि कार्य्य के लिये उत्तम और विशुद्ध अरक व्यवहार करना अच्छा है। साधारण कारण के लिये सस्ता द्रव्य लेकर और व्यवहार करने से सदा खराब काम होंगे, और लाभ के बदले उलटी हानि सहनी पड़ेगी। प्रत्येक अरक के व्यवहार करने के लिये अलग अलग डिश, बोतल और कीप व्यवहार करने चाहिये। सम्पूर्ण द्रव्यों पर नम्बर और नाम का लेबिल लगा रखना सर्वोत्तम है।

९—बदली वा पानी बरसते में नैसर्गिक चित्र उतारने का कभी उद्योग न करो।

१०—प्लेट और प्रिण्ट से हाइपो अच्छी तरह धो लेना चाहिये। ऐसा न करने से नेगेटिव का फिलम नष्ट हो और चटक जाता है और इसका प्रिण्ट बहुत जल्दी उड़ जाता है।

११—चित्र उतारने के समय लेन्स में सूर्य्य की किरण प्रविष्ट न हो, इसका अधिक ध्यान रखना चाहिये।

१२—जब कभी तुम्हें बाहर काम करने के लिये जाना पड़े, तब अपने सम्पूर्ण आवश्यकीय द्रव्यों को देख कर मिला लो। यह द्रव्य वहां मिल जायगा यह ध्यान करके किसी द्रव्य के छोजाने में आलस न करना चाहिये। और सबसे पहिले कैमरा, लेन्स, कैमरा कसने वाला स्क्रू, डार्कस्लाइड, ग्राउण्ड ग्लास, और क्याप कभी नहीं छोड़ने चाहियें।

१३—डिश, प्रिण्ट और नेगेटिव को अच्छी तरह धोना लाभकारी है। यहां यह कहना बुरा न होगा कि उपर्युक्त वस्तु को सदा स्वयं अपने हाथही से अच्छी तरह धोना चाहिये।

१४—जल्दी और सुन्दर चित्र उतारने के लिये स्वच्छता अर्थात् सफाई का अभ्यास करो, जैसे कैमरा और लैन्स का साफ करना, डार्क रुम का दरवाज़ा और खिड़की को साफ़ रखना, अरकों का स्वच्छ रखना; और अपने लिये निर्मल वायु का सेवन तथा मस्तिष्क को ठीक रखना।

१५—फोटोग्राफ़र और कैमरे का अत्यन्त गरम स्थान में वा अत्यन्त शीतलस्थान में रहना अच्छा नहीं है। अपने कैमरे और केमिकल्स (अरक) को गरमियों में ठंढी जगह और जाड़े की ऋतु में गरम स्थाज में रखना लाभकारक होगा और आपभी गरमी में शीतल और शोत के समय गरम स्थान में रहना उतम है।

१६—निर्मल वायु स्वास्थ्य का मूल है। तुम्हारे डार्करूम के द्वार का किवाड़ा खोल कर निर्मल वायु आने का उपाय (Ventilation) वेन्टीलेशन द्वारा सदा करना चाहिये, तुम्हारा कमरा और डार्कटेण्ट में भी निर्मल वायु का आना बहुत आवश्यक है।

१७—फोटोग्राफ़िक जर्नल को पढ़ कर आवश्यकीय स्थानों में चिन्ह (Mark) करना परमावश्यक है, किन्तु सबकी परीक्षा करने का उद्योग न करना चाहिये, क्योंकि सब विषय तुम्हारे हाथ से नहीं अच्छे होंगे। इसका कारण यह है कि सब ठिकाने का जल वायु एक सा नहीं है।

१८—पहिले एक विषय में अभ्यास कर लेने पर तब और और विषयों को परीक्षा वा उनका अभ्यास करने से लाभ हो सकता है।

१९—केवल अनुमान पर निर्भर करके कभी आलोक चित्रण के अरकों को मिलाना न चाहिये। सब वस्तु को परिमाण के साथ मिलाना उचित और उपयोगी है।

२०—किसी कार्य्य के विफलमनोरथ होने पर किसी विज्ञ फोटोग्राफ़र से परामर्श ग्रहण करना चाहिये।

२१—जहां कल का जल न मिलता हो, वहां जल को गरम करके फिल्टर कर लो और पीछे ठंढा होने पर कार्य्य में लाओ*।

समाप्त

बालक-विनोद

ईश्वर की महिमा।

१

हे हे महाप्रभु! महा-महिमा तुम्हारी
जिव्हा नहीं कह सुना सकती हमारी।
सौ वर्ष भी यदि सदा तव कीर्त्ति गावै,
तौ भी कभी न उसके वह पार जावै॥

२

पृथ्वी, समुद्र, सर, पेड़, पहाड़ सारे
हैं सत्य सत्य जगदीश! दिए तुम्हारे।
हे नाथ! आप यदि सूर्य हमें न देते,
पक्षी, मनुष्य, पशु, जीव न एक जीते॥

३

जो ये अनेक फल हैं हमको दिखाते,
खाते नहीं हम कभी जिनको अघाते।
जो फूल नेत्र-सुखदायक ये खिले हैं;
सो भी सभी तव कृपाकण से मिले हैं।

४

देते न जो तुम हमैं अनमोल आँख,
पाते उन्हें न, करते यदि यत्न लाख।
हे दीनबन्धु! गुणसिन्धु! पवित्रनाम!
हे नाथ! हे अति कृपालु! तुम्हें प्रणाम॥

५

जो जो छिपाय हम काम बुरे करैं हैं;
जानै न और, इससे मन में डरैं हैं।
सो सो सदा तुम उसी क्षण जान लेते;
तत्काल दण्ड हमको जगदीश! देते॥

६

जो झूठ बात हम, हे प्रभु! बोलते हैं,
अच्छे बुरे विषय में मुंह खोलते हैं।
सो भी कभी न तुमसे छिपती छिपाए;
होते अनेक हमसे अपराध आए॥

७

हे हे दयालु! इससे कर जोड़ते हैं;
सारी कुचालु अब से हम छोड़ते हैं।
जो भूल चूक परमेश्वर! हो हमारी,
कीजै क्षमा; शरण में हम हैं तुम्हारी॥

साहित्य समालोचना

[पूर्व प्रकाशित के आगे]

(६) "चिरजीवी रहो विकटोरिया रानी"—इस विषय में पर्य्यालोचक जी कहते हैं "इस समस्या की पूर्त्ति में हमें कोई दोष नहीं दिखाई देता, न जाने किस आधार पर समालोचकों ने इसका उपहास किया है। क्या यह पूर्त्ति उससे भी बुरी है जिसमें 'पूरी अमी की कटोरियासो' इन शब्दों का व्यवहार किसी कवि ने किया है?"

* स्थानाभाव से फोटोग्राफ़ी के समाप्त होने में बहुत विलम्ब हो गया। परन्तु बहुत से महाशय, सरस्वती की पुरानी प्रतियां अब और न मिलने के कारण, इस प्रबन्ध के सब लेख नहीं पा सके हैं और इसलिये हमें बार बार पत्रे लिखते हैं। उनके और दूसरे लोगों के लाभार्थ फोटोग्राफ़ी पुस्तकाकार छप रही है।

(क) वस्तुतः इसकी पूर्त्ति में कोई विशेष दोष नहीं है, पर हमने इसका उपहास क्या किया? हमने तो इतनाही लिखा है कि इसपर "इन (पाठकजी) की पूर्त्ति देख पण्डित प्रतापनारायण मिश्र का स्मरण आता है"। तो इसमें उपहास की कौन सी बात हुई? इसका आशय इतनाही हो सकता है कि उक्त मिश्र जी की पूर्त्ति पाठक जी की पूर्त्ति से श्रेष्ठतर है और इसकी सत्यता के कदाचित् पाठक जी तक भी विरोधी न होंगे। दोनों महाशयों की पूर्त्तियां हमने समालोचना में उद्धृत करही दी हैं, अतः उनके भावों में जो अन्तर है उसे दिखाने की कोई आवश्यकता नहीं है। हां, यदि आप पाठक जी की प्रत्येक रचना को हिन्दी के सभी मृत और जीवित कवियों की रचनाओं के उत्तमोत्तम भागों से भी श्रेष्ठतर मानते हों तो उसकी बातही और है।

(ख) हमने यह कहीं नहीं लिखा है कि पाठक जी की यह अथवा कोई अन्य पूर्त्ति या रचना त्रैलोक्य के शेष समस्त कविताओं से निकृष्ट है, और कटोरिया वाले कवित्त का हमने नाम तक नहीं लिया, वरन हमने तो मनोविनोद के भाग २ व ३ की आपेक्षक न्यूनता बतलाते समय तक स्पष्ट रीति पर लिख दिया कि आधुनिक "मध्यम श्रेणी वाले कवियों की उपहासजनक कविता को म. वि. के इन दोनों भागों से भी किसी अंश में समता" नहीं की जा सकती है। तब पर्यालोचक जी ने यह निष्कर्ष कहां से निकाल लिया कि हम "पूरी अमी की कटोरिया" वाली पूर्त्ति से पाठक जी की पूर्त्ति को निकृष्टतर मानते हैं। यदि उपर्युक्त पूर्त्ति से हमारे पाठक जी की पूर्त्ति अच्छी भी मान ली जाय तो क्या इससे उसको उत्तम पूर्त्तियों की श्रेणी में स्थान मिल गया? और यदि "किसी" की कविता को कहिए तो आल्हा, विरहा, और कबीर, इत्यादि की भी रचना किसी न किसी व्यक्ति ने की ही है, पर "पूरी अमी की कटोरिया" वाली पूर्त्ति ऐसी निकृष्ट कदापि नहीं जैसी आप उसे समझते हैं और न वह "किसी" अज्ञात तुक जोड़ने वाले की रची ही हुई है। उसके रचयिता सुप्रसिद्ध साहित्याचार्य्य पण्डित अम्बिकादत्त जी व्यास थे और इसी पूर्त्ति पर प्रसन्न हो भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने व्यास जी को सुकवि की उपाधि दी थी। आप उसे चाहे जैसी समझें!

(७) "बच्चा" और "भींय" शब्द—हमारी समझ में "जगत है सच्चा तनिक न कच्चा समझो बच्चा इसका भेद" पद में "बच्चा" शब्द यदि गाली न भी माना जाय तो "असाधु और अविनीत" अवश्य है। यह पद या तो प्रतिवादी या पाठक के प्रति कहा गया है। प्रथम अवस्था में वह गालि प्रदान ही माना जायगा, क्योंकि अपने प्रतिवादी को बच्चा कहने का यही आशय हो सकता है कि "अभी लड़के हो, इन बातों को समझो" और द्वितीय स्थिति में वह शब्द या तो गालीद्योतक है या असाधु और अविनीत। किसी लेखक को अपने पाठकों के प्रति ऐसा कहने का कदापि अधिकार नहीं कि "तुम तो अभी छोकड़े हो, इन बातों के समझने का प्रयत्न करो"। आप अपना "वात्सल्य भाव" अपने लड़के बाले और शिष्यों ही पर प्रगट करने के अधिकारी हैं, न कि अपने प्रतिवादी या पाठकगणों के प्रति। ऐसी अवस्था में हमने यदि "बच्चा" शब्द गालीद्योतक बतलाया तो क्या दोष किया? तब पर्यालोचक जी का हमारे ऊपर यह तीव्र आक्षेप कि "यह एक अपूर्व विज्ञता और और मर्मज्ञता की बात आप के श्रीमुख से प्रगट हुई है" हम नहीं कह सकते कि कहां तक उचित है। हम तो किसी व्यक्ति को इस प्रकार मूर्ख बनाना उचित नहीं समझते, परन्तु आप कदाचित् इसीको सभ्यता और सुलेखकता की मुख्य सामग्री मानते हों।

"भींय" शब्द के विषय में हम आपसे झगड़ा नहीं कर सकते, क्योंकि आप श्री वृन्दावन के निकटवर्ती ठहरे परन्तु वृन्दावनवासी स्वयम् श्री राधाचरण जी गोस्वामी हमें लिखते हैं कि

"भीय" ब्रज भाषा का कोई स्वतन्त्र शब्द नहीं है, वह "भीः" शब्द का अपभ्रंश हो सकता है अतः इसको हम "भय" का उपर्युक्त गोस्वामी जी "भीः" का और आप "भियो" का अपभ्रंश बतलाते हैं, तो इससे यह सिद्ध हुआ कि यह शब्द अपभ्रंश अवश्य है। सुतरां हमारा पूर्व कथन तौभी पुष्ट रहा, क्योंकि अनुप्रास के अर्थ पाठक जी ने किसी न किसी शब्द के स्थान पर 'भीय' लिख कर अवश्य अपनी कविता को च्युत संस्कृत दूषण से विभूषित किया।

(८) "पाठक जी के विषय में कतिपय अनुमान"—समालोचकगण बहुधा जिस कवि की रचना पर आलोचना करते हैं उसके विषय में न्यूनाधिक अनुमान अवश्य करते हैं। देखिए न, बाबू राधाकृष्ण दास जी और बंगवासी ने बिहारी लाल जी के विषय में कितने अनुमान किए हैं। परन्तु इन अनुमानों को कोई व्यक्ति पूर्णतया खण्डित नहीं कर सकता, क्योंकि वह महाकवि और उससे विशेषतः परिचित महाशय तक अभाग्यवश आज विद्यमान नहीं हैं। किन्तु हमने पाठक जी के विषय में कतिपय अनुमान इस कारण लड़ाए कि देखें शुद्ध अनुमान करने की हमारी कहां तक योग्यता है, क्योंकि हम जानते ही थे कि (पाठक जी के एक वर्तमान कवि होने के कारण) हमारे अशुद्ध अटकलों का या तो वेही, या उनसे विशेष परिचित कोई अन्य महाशय, खण्डन अवश्य करेंगे। तो ऐसी स्थिति में हम पर्यालोचक जी की इस आज्ञा का (कि हमें इन विषयों पर पाठक जी से पूछ कर लिखना उचित था) पालन कैसे कर सकते थे? आपकी समझ में हमने "कई एक निर्मूल बातें प्रकाश की हैं," पर आप ही के लेख से हमारे अनुमानों का कई अंशों में समर्थन होता है।

(क) हमने पाठक जी के बदरिकाश्रम जाने का अनुमान किया था, पर वास्तव में वहां तो वह नहीं गए थे, किन्तु "हिमालय पर आठ नौ वर्ष निवास कर चुके हैं," क्या हमने यह नहीं लिखा है कि हिमालय पर के कतिपय दृश्य इन्होंने "ऐसी रीति से लिखे हैं कि जिससे ज्ञात होता है ये केवल चित्तही की उपज नहीं हैं"। हमारा इतना अनुमान तो आपही के कथनानुसार शब्द प्रति शब्द शुद्ध है। फिर हमारा बदरिकाश्रम वाले अनुमान का भी मुख्य प्रयोजन यही था कि "ये महाशय हिमालय को पधारे थे"। हमने समझा कि हमारे पाठक जी ब्राह्मण हैं, यदि हिमालय पर गए होंगे तो श्री बदरिकाश्रम को भी अवश्य गए होंगे। अब आप ही न्याय कीजिए, हमारा अनुमान कितनी सत्य निकला।

(ख) पाठक जी के ग्रन्थों में छन्दों के नाम न लिखे रहने का हमने तीन में से कोई एक कारण होना बतलाया है—(१) छन्दों के नामों में आचार्यों का एक मत न होना; (२) पाठक जी का नवीन प्रकार के छन्द निर्माण करना; (३) छन्दों का नाम ही न जानना (और इस तीसरे अनुमान का प्रमाण हमें मनोविनोद के प्रकाशक के "वक्तव्य" से मिला कि "पद्य रचना में रुचि पाठक जी को सदा स्वाभाविक रही है, परन्तु सीखने का प्रयत्न उन्होंने कभी नहीं किया")* हमको यह भी सन्देह उपस्थित हुआ था कि संस्कृत और भाषा के बड़े बड़े कवियों की भांति सम्भव है कि हमारे पाठक जी ने भी इस वक्तव्य में ऊपरी दिखाव की नम्रता मात्र की हो, इसी कारण हमने उपर्युक्त तृतीय कारण में डरते डरते यह लिख दिया। यदि हमको इस बात का निश्चय होता तो यह निश्चयात्मक शब्दों में लिख देते, क्योंकि हमतो राग द्वेष छोड़ सत्य समालोचना करने बैठे थे। परन्तु आपके कथन से हमको अब यह ज्ञात होता है कि हमारे उस वक्तव्य का केवल दिखाव मात्र होनेवाला अनुमान भी यथार्थ था।

* यह हमारे अनुमान का दृढ़ आधार अवश्य ज्ञात पड़ता है।

(ग) विधवा विवाह के विषय में ते हम निडर होकर कहेंगे कि अपने पद्यों की ध्वनि से पाठक जी उसके पक्षपाती निस्सन्देह जान पड़ते हैं ग्रोर सम्भव है कि वे प्रथम इसकी ग्रोर रहे हों, पर अब उनके विचारों में कुछ परिवर्तन हो गया हो। नहीं ते "पहिले तुम बालक ब्याह रीति कौं तोड़हु। पीछे विधवातिय कष्ट हरन मन जोड़हु" के द्वितीय पद का ग्रोर क्या अर्थ हो सकता है? विधवाओं के दुःख सूचक अन्य पद्यों के विषय में ते आप यह कह कर बात बना लेंगे कि पाठक जी उनमें बाल विवाह ही की कुरीति पर आक्रमण करते हैं, क्योंकि यदि बालविवाह की रीति प्रचलित न होती ते उन विधवाओं को सम्भवतः यह वेदना न झेलनी पड़ती पर इस स्थान पर आप क्या कह सकते हैं? यदि आप कहिए कि उनको रङ्गीन वस्त्र, आभूषण आदि न पहिराने ग्रोर उनके अधिक व्रतों के रखवाने के विषय में यह पद्य रचा गया है, ते आपका मुख चिढ़ाना मात्र होगा; क्योंकि ये ऐसे कष्ट नहीं हैं कि जिनके विषय में कुरीति संशोधक ऐसी पुकार करें, वरन् एक प्रकार से ते यह उपयोगी रीतें हैं। फिर इस बात से पाठक जी की कुछ निन्दा भी हमने नहीं की। हम स्वयम् इस कुरीति के विरोधी हैं। आपने कदाचित् हमारी समालोचना में दोषों की संख्या वृद्धि के हेतु यह भी लिख दिया हो।

(९) "समालोचना की भाषा" जिसे पर्यालोचक जी "असाधु" ग्रोर "अविनीत"—भाषा कहते हैं उसके विषय में हम ऊपर अपना कथन प्रकाशित कर चुके हैं। अब केवल "आक्षेपास्पद" "अशुद्ध" ग्रोर "अव्यवहृत" भाषा पर जो आपको हमारी समालोचना में दृष्टिगोचर होती है, कुछ कहना शेष है।

प्रथमतः हमारी समालोचना में "अनेक शिक्षा ग्रोर लाभदायक संकेत" बतलाने पर हम आपको धन्यवाद देते हैं। हमारी समालोचना के विषय में जो बातें आप आक्षेपास्पद बतलाते हैं, उनका भी उत्तर हम ऊपर दे आए हैं। यह बात ते कदाचित् अधिकांश हिन्दीरसिक मानते हैं कि द्वितीय भाग प्रथम की अपेक्षा बहुत न्यून है, क्योंकि उसमें "बालविधवा ग्रोर" ग्रोर "गोपिका गीत" को छोड़ कर शेष वर्णन प्रथम भाग के वर्णनों में अधिकांश की छाया तक नहीं छू पाते। ग्रोर तृतीय भाग पर ते परमेश्वर की कृपाही है। उसमें सिवाय "इवाञ्जलाइन" ग्रोर "प्रेम पियाला" के भला आपही कहिए कि कौन सा वर्णन रोचक है? विशेष दोष हमने इस कारण नहीं दिखलाए कि हम किसी सज्जन के परिश्रम की विशेष निन्दा करना अनुचित ग्रोर ऐसे निन्दक को ईश्वर के प्रचण्ड कोप का भागी समझते हैं।

यदि दोष दिखाने को कहिए ते क्या आपको स्मरण नहीं है कि कुलपति मिश्र ने कहा है कि "ऐसा कवित न जगत में जामैं दूषण नाहिं"?

लीजिए, हम आपके कहने से विवश होकर पाठक जी कृत "भ्रमराष्टक" की गौरव स्वरूप एक ऐसी सवैया में आपको दूषण दिखलाते हैं, जिसको हमीने बड़े मान के साथ सबसे प्रथम उद्धृत किया था यथा—

"ए अलि श्यामता ते मैं घनो छवि सों
कटिपै पट पीत विराजै।
बाल लता बनवारी नई तिनके
ढिग तू छिन पै छिन भ्राजै॥
प्यारी सी गुञ्ज सों कुञ्जन में
बनवारी की बांसुरी को धुनि लाजै।
श्याम भये वृजिवारिन कौ तुम
नारिन माहिं तू श्याम सो राजै॥"

इसके तुकान्त 'विराजै' 'भ्राजै' समसरि, विषमसरि, ग्रोर कष्टसरि तीनों को उल्लंघन करके असंयोग मिलित पर जा ठहरे। ऐसे तुकान्त काव्यप्रणाली में निन्द्य गिने जाते हैं। प्रथम ग्रोर तृतीय पदों में 'कटि' व 'गुञ्ज' शब्द के प्रथम 'तेरो' शब्द अपनी ग्रोर से मिलाना पड़ता है। फिर 'गुञ्ज' का अर्थ ते घुंघची है भ्रमर के गुञ्जार के

अर्थ में इसका प्रयोग करने से असमर्थ दोष लगता है। द्वितीय चरण में बाल शब्द के अर्थ यदि युवती के लें तो भ्रमर का तो लताओं में भ्राजित होना कहा है, परञ्च कान्ह और युवतियों के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा, क्योंकि 'भ्राजै' शब्द का कर्ता केवल 'तू' है, लता में पुष्पों का तो वर्णन हुआ ही नहीं है, फिर मलिन्द की वहां क्या आवश्यकता थी? यदि 'बाल' के अर्थ नवीन के लीजिये तो अर्थ पुनरुक्ति होती है। 'भ्राजै' शब्द श्रुतिकटु है। छिन पै छिन आपही के मतानुसार अव्यवहृत है। चतुर्थ चरण में तारतम्य बिगड़ता है। उसमें यह कहा है "श्याम व्रज की युवतियों के लिये हुए" और "तू लता रूपी युवतियों में श्याम की भांति विराजमान है"। तारतम्य तो यही मांगता है कि "तू द्रुम की युवतिओं के लिये हुआ"। तृतीय चरण में पहिले भ्रमर का वर्णन हुआ है फिर श्याम का, परन्तु चतुर्थ चरण में इसका उलटा हो गया है। फिर इस छन्द में पतत्प्रकर्षता दोष भी विराजमान है, क्योंकि तृतीय चरण में तो भ्रमर श्याम से बढ़ गया है, परन्तु चतुर्थ में फिर गिर कर उनके समान ही रह गया। अलङ्कार का भी पूर्णरूप से निर्वाह नहीं हुआ है। सम्पूर्ण सवैया में समतद्रूप प्रधान है। किन्तु तृतीय चरण में अधिक तद्रूप हो गया है; और इसमें वाचक रहने के कारण रूपक भी नहीं हो सकता। अब स्थूलरूपेण 'विकटोरिया रानी' वाली समस्या के भी एक आध दोष लीजिए, जिसमें पर्यालोचक जो कहते हैं कि कोई दोष नहीं है। सरस्वती के ३६५ वें पृष्ठ पर देखिए। प्रजा शब्द स्त्रीलिङ्ग अवश्य है, परन्तु 'प्रजागन' नहीं, क्योंकि इसके अर्थ प्रजान के गन हैं, अर्थात् इसमें षष्ठीतत्पुरुष समास है। अतः यह शब्द पुल्लिङ्ग है। अतएव इसके विशेषण 'फ़ली' और 'आनँदसानी' स्त्रीलिङ्ग लिखना रचयिता की भूल है। फिर स्त्रीलिङ्ग को भी नहीं निभा सके, क्योंकि द्वितीय चरण में 'प्रतीति भरे' विशेषण पुल्लिङ्ग रक्खा है। चतुर्थ चरण में प्रजाओं के प्रकार में भी श्रीमती का पवित्र नाम आ ही गया है, फिर नाम उच्चारण करना क्यों लिखा? यह उच्चारण निष्प्रयोजन है।

ये समस्त दोष इन कवित्तों में वर्तमान अवश्य हैं, परञ्च सहृदय समालोचकों का यह धर्म नहीं है कि "जेहि सुभाय चितवहिं हित जानी—सो जानै जनु आयु खुटानी"। उनको उचित है कि समालोचना लिखते समय यह भी सोच लें कि इन रचनाओं के करने में बिचारे कवि ने कितना परिश्रम किया होगा; और उनकी विशेष निन्दा करने में उसके चित्त पर कितनी चोट लगेगी। इसीसे हमारा मत है कि बिना स्वयं कवि हुए कोई व्यक्ति सच्चा सहृदय समालोचक नहीं हो सकता। उपर्युक्त प्रकार के दोष दिखाने से हम समालोचक को कवि का शत्रु समझेंगे। फिर जब उत्तम कवित्तों में इतने दोष दिखा सकते हैं, तो क्या हम "कीकर पतान में" इत्यादि समस्याओं की पूर्तियों में दोष नहीं बतला सकेंगे? परन्तु नहीं, हमने उनके विषय में मौन धारण ही श्रेष्ठ समझा। हमने भाषा के उत्तमोत्तम शत नवीन और प्राचीन कवियों की कविता पर समालोचना लिखने का निश्चय किया है और उन आलोचक ग्रन्थों के आधार पर "हिन्दी का जन्म और गौरव" या किसी अन्य ऐसे ही नाम की पुस्तक निर्माण करने का भी विचार है। इसमें हिन्दी में उसके जन्म से अद्यावधि क्या क्या उन्नति तथा अवनति हुई है, और उसके स्वरूप में क्या क्या हेर फेर हुआ है, इनका वर्णन किया चाहते हैं। यह कार्य बिना बहुतायत से समालोचना सम्बन्धी ग्रन्थ प्रस्तुत होने के और किसी प्रकार नहीं हो सकता। इसी हेतु हमने समालोचना करने का प्रारम्भ किया है और जब शङ्कर की कृपा से एक सौ उत्तमोत्तम कवियों की समालोचना हो जायगी, तब उक्त ग्रन्थ के बनाने का प्रयत्न करेंगे। [इस अपने अभिप्राय को हमने विस्तार पूर्वक वर्णन इस कारण किया कि कदाचित् कोई सुलेखक हमारे इस विचार को उत्तम समझ कृपा करके

समालोचनाओं द्वारा हमारी सहायता करे, अथवा स्वयं उस ग्रन्थ के निर्माण करने का प्रयत्न करे।] हमने पण्डित श्रीधर पाठक जी के उन शत महाकवियों में समझा है. इस कारण से भी हमने इनके दोषों का बड़े बिस्तार से वर्णन करना अयोग्य जाना, नहीं तो दोष दिखाना भला क्या बड़ी बात थी। यदि कतिपय विद्वज्जन हमारी सहायता करेंगे तो हम भी अपने अभीष्टसाधन (उक्त ग्रन्थ के निर्माण) में बहुत शीघ्र सफलमनोरथ होंगे, नहीं तो कई वर्ष इस कार्य में लगना सम्भव है; किम्बहुना।

(१०) "अन्य लेखकों के उपकारार्थ" जो पर्य्यालोचक महाशय ने हमारी समालोचना की भाषा में त्रुटियां दिखलाई हैं, उनके विषय में हमें केवल यही वक्तव्य है कि आप अव्यवहृत किस पदार्थ के कहते हैं? क्या आंखों पर पट्टी बांध कर पुराने ढर्रे पर चले जाने के सिवाय कोई मनुष्य कोई नई वस्तु नहीं लिख सकता? क्या श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने भुंइ, फुटै, बाड, माहुर, गनी, गाई, अवड़ेरि, खटांहि, दुइ भीतर, जिनिसि, सुवर, सयाने (युवापुरुषों के अर्थ में), जहिया, तहिया, चैापट, झंगुलिया, हलरावैं, जानबी, अनइस, बाट परै, कठैाता, देवा, लेवा, कतहुं, ठाहर, ठाट्ट, साउज, मुठभेरी, बेहड़, बिढ़ै, थन, डोरियाये, बारहबाट, ढरके, खम्भारू, पनही, गुदरत, गांड़र, नेवाजा, नेहू, अकसर, डावर, निरावहिं, उबरिहसि, ठकुर सोहाती, डंहरुआ, नहरुआ, मां (माता के अर्थ में), इत्यादि इत्यादि शब्दों का प्रयोग नहीं किया है? और क्या तब से अद्यावधि समस्त लेखक सोते थे और उनके अन्य लेखकों के सुधार का इतना विचार न था? बरन दास जी ने उन्हीं महाशय के अनेक प्रकार के शब्दों के व्यवहार करने के कारण यहां तक कहा है कि–

"तुलसी गङ्ग दुवैा भये सुकबिन के सरदार।
इनकी काव्यन में मिली भाषा बिविधि प्रकार॥"

यदि आप कृपया रत्नाकर जी कृत हम्मीरहठ की भूमिका देखिए तो आप "कवि ज्ञी" शब्द के अव्यवहृत न पाइएगा। हां, यदि आप उनके ऊपर हमारे समान दयादृष्टि नहीं रखते थे, तो लेखकों के हितार्थ आपके उनकी भूल भी सुधारनी आवश्यकीय था। भाषा का यह सहज स्वरूपही है कि उसमें अनेक प्रकार की बोलियां होती हैं। जब श्री गोस्वामी जी ने इतने शब्द लिखे और वे अणुमात्र पातक के भागी न हुए, तो हम दोही एक शब्दों में इस घोर कोपसागर में क्यों निमग्न हुए जाते हैं। आप तो यहां तक जांय कि यदि तुलसी दास जी ने श्रुतिकटु और छन्दोभङ्ग तक किया हो तो आप भी कर सकते हैं, और हमके इतनी अनुग्रह पाने का भी सैाभाग्य नहीं प्राप्त है?

"विद्याओं के अनुवाद" के यदि आप ठीक अर्थ लगाते तो कदाचित् यह पद आपके अशुद्ध न जंचता। क्या 'संस्कृत विद्या की पुस्तकें उत्तम हैं' यह वाक्य आपको अशुद्ध जान पड़ता है? फिर 'भाषा के अनुवाद' अर्थात् 'भाषा में अन्य भाषाओं के ग्रन्थों के अनुवाद', यह वाक्य आपके कैसे अशुद्ध जान पड़ा? सम्भवतः आपने 'अन्य विद्याओं' से उन विद्याओं का अर्थ समझा जिनकी पुस्तकों का अनुवाद किसी दूसरी भाषा में हो। परन्तु वास्तविक अर्थ इसका उन विद्याओं का है जिनकी पुस्तकों में अन्य विद्याओं की पुस्तकों का अनुवाद होता है। सूक्ष्म में अनुवाद शब्द का अर्थ अनुवादक पुस्तकों का है, आप कृपया उस स्थल पर हमारा लेख फिर पढ़िए। "ही", "भी", "अति" "अत्यन्त" आदि तो ऐसे शब्द हैं कि इनका व्यवहार करना प्रायः लेखक की इच्छा पर निर्भर है। इनसे कोई विशेष अर्थ का साधन तो होता ही नहीं, हां ये किसी शब्द पर ज़ोर (Emphasis) देने के निमित्त प्रयोग किए जाते हैं। सम्भव है कि हमने किसी स्थान पर इन शब्दों द्वारा ज़ोर देना योग्य समझा हो और आप उसे अनुचित मानते हों। जब तक आप किसी स्थानविशेष पर इनका अनुचित प्रयोग न बतलाइएगा, तब तक हम अपने लेखों में आपकी इस अनुमति पर अनुगमन नहीं कर सकते।

हां, दो एक स्थानों पर हमारे लेखों में कर्तृ वाच्य (Active voice) और कर्म वाच्य (Passive voice) का अशुद्ध फेर अवश्य पड़ गया है, जिन पर आपका ध्यान भी न गया और जिनको हम अवश्य अशुद्ध मानते हैं। परन्तु ऐसी अशुद्धियां तभी हो जाती हैं जब लेखक अपने लेखों को एक ही बार दुहरा कर प्रेस को भेज देते हैं। और यों तो अनेक अशुद्धियां भा० मि० के १७ दिसम्बर वाले तथा आप के "साहित्य-समालोचना" लेखों में भी हो गई हैं। किन्तु इन तुच्छ बातों पर हम विचार ही नहीं करते। आपने "सरस्वती" में तो छापे की अशुद्धियां बतला दीं, परन्तु भला अपने इस छोटे से लेख ही में आपने सात सात पंक्तियां क्यों अशुद्ध कह कर काटीं? क्या यह अशुद्धियां नहीं हैं? अलमिति विस्तरेण। अन्त में हम पर्य्यालोचक महाशय को अपनी समालोचना को "निस्सन्देह साधारणतः एक अच्छी समालोचना का उदाहरण," बतलाने पर धन्यवाद देकर लेख को समाप्त करते हैं॥

जापान के सम्राट्ट और सम्राज्ञी

इस मास की संख्या में जापान के वर्त्तमान राजा और रानी का चित्र प्रकाशित हुआ है। मुत्सुहितो इस शताब्दी के विख्यात सम्राटों में गिने जाते हैं। इनका जन्म ३ नवम्बर, १८५२, में हुआ था। यह जैसेही विशालबुद्धि, सभ्यज्ञ, सर्वप्रिय और गम्भीर राजनीतिज्ञ हैं, वैसी ही उदार, सुशील और विदूषी स्त्री से इनका विवाह हुआ है। इनके १ पुत्र और ५ कन्याएं हैं। वर्त्तमान समय में जापान ने जो उन्नति की है उसके अन्य कारणों के अतिरिक्त ऐसे शासक का होना भी एक महान कारण और इस देश के लिये बड़े ही सौभाग्य की बात थी।

चीन देश के नाम से भारतवासी भली भांति परिचित हैं। जापानी भी धर्म में, रीति व्यवहार में चीननिवासियों के सदश हैं, परन्तु जापान को एशिया का इङ्गलैण्ड कहते हैं। स्वतंत्रता के प्रादुर्भाव में, कला कौशल की उन्नति में, पुरानी कुरीतियों के संशोधन में जापान आजकल एक आदर्श समझा जाता है। इसी जापान ने ४ वर्ष व्यतीत हुए चीन को परास्त किया था और अपनी राजनैतिक कीर्ति सारे संसार में फैलाई थी। हमें आशा है कि ऐसे देश का संक्षिप्त वृत्तान्त न केवल लाभदायक ही वरञ्च रोचक भी होगा। हम इस छोटे निबन्ध में जापानदेश की उन्नति के सम्बन्ध में कुछ कहेंगे।

जापानदेश में पूर्वकाल से दो राजा चले आते थे। एक "शोगन" और दूसरे "मिकाडो" कहलाते थे। इन दोनों में सदैव खटपट रहा करती थी। ये परस्पर में एक दूसरे की आज्ञा का विरोध किया करते थे। मिकाडो घर से बाहर नहीं निकलते थे। इनकी स्त्रियों और मंत्री के अतिरिक्त और कोई इनका मुख भी नहीं देख सकता था। यदि किसी को कभी इनसे मिलने की आज्ञा भी मिलती तो राजा परदे के अन्दर रहते। सन् १८५६ ई० में शोगन ने योरोपीयन जातियों को जापान से व्यापार करने की आज्ञा दी, परन्तु मिकाडो ने इसका बड़ा विरोध किया। पर योरोपियन लोगों को ज्योंही एक वेर आज्ञा मिली फिर वह कब टलनेवाले थे। परिणाम यह हुआ कि स्वयं मिकाडो योरोपियन लोगों से कुछ समागम बढ़ाने लगे। इसी समय कुछ जापानी युवकों ने योरोप की यात्रा की और वहां की राज्य-प्रणाली देखकर उनकी आंखें खुलीं। उन्होंने अपने देश में आते ही आन्दोलन मचाया कि जापान में दो शासक रहने की कोई आवश्यकता नहीं। इस नवीन दल का इतना प्रभाव फैला कि शोगन पद सदैव के लिये तोड़ दिया गया। इसी समय मिकाडो का देहान्त हुआ और उनका पुत्र गद्दी पर बैठा। इस समय जो मन्त्री नियत हुआ वह भी नवीन विचारों से सहानुभूति रखता था। इसका नाम ओक्यूबो था। इसने राजा को सलाह दी की राजा का परदे में रहना राज्य की वृद्धि के उपयोगी नहीं और उनसे परदे के बाहर आने की प्रार्थना की।

"सात शताब्दी बीत गईं और हे महाराज ! हमारे सम्राट तब से परदे में रहते आए हैं। भूमि पर कभी पैर नहीं रखा। संसार में क्या हो रहा है इसका समाचार महाराज के पवित्र कानों तक नहीं पहुंचता, इसलिये आज से इस झूठी मर्य्यादा को भुला दीजिए"। राजा की अवस्था इस समय केवल १८ वर्ष की थी। उन्होंने मन्त्री के प्रस्ताव को स्वीकार किया, परन्तु उनके बाहर आते ही नवीनत्व के विरोधियों ने जिनकी संख्या अनगिनत थी, विद्रोह खड़ा कर दिया। तीन दिन तक घोर युद्ध होता रहा, अन्त में मिकाडो की जय हुई। इतिहासप्रेमियों पर विदित है कि जर्मनी में जब बिस्मार्क मन्त्री नियत किए गए थे, तो प्रत्येक ज़मीन्दार अपनी ज़मीन का पूर्ण अधिकारी था और राजा को उसके अधिकार में हस्तक्षेप करने का नियम न था। परन्तु बिस्मार्क ने अपने जीते जी जर्मनी को एक राजा की ज़मीन्दारी बना दिया। उसी प्रकार जापान में भी इस समय प्रत्येक ज़मीन्दार अपने को राजा समझता था। योरप से आए हुए नवयुवक लोगों ने इसको तोड़ने का यत्न किया और उसमें वे कृतकार्य्य हुए। सन १८७१ ई० में सब ज़मीन्दार और धनाढ्य लोग टोकियो में, जो जापान की राजधानी है, मिले और अपना अपना सिर राजा के आगे झुकाया। उसी वर्ष डाकखाने और टकसाल खोले गए, तार जारी की गई और दूसरे वर्ष रेल चलाई गई। सीतला से बचने के लिये टीका लगाया जाने लगा सन् १८७५ में भिन्न प्रान्तों के राज्याधिकारियों की सभा की गई, जिसमें वे लोग अपने अपने प्रान्तों की उन्नति पर विचार करने लगे। फिर प्रान्तिक सभाएं स्थापित हुईं और उनमें सर्वसाधारण की सम्मति प्रतिनिधि सभ्यों द्वारा ली जाने लगी। सन् १८७४ में योरप के ढंग पर धनाढ्य लोग लार्ड बनाए गए जिसमें धनाढ्यों की सभा सर्वसाधारण की सभा से पृथक स्थापित की जाय। सन् १८८५ में पुरानी कौंसिल, मन्त्री का पद इत्यादि तोड़ दिए गए और कैबिनेट अर्थात राज्य मन्त्रियों की एक सभा स्थापित हुई और बड़े पदों पर विद्वान लोग नियत किए गए। ८००० अनावश्यक पदों को तोड़ कर बहुतसा व्यर्थ व्यय बचा लिया गया। सन् १८८२ में न्यायालय खोले गए और न्याय करने के लिये जज नियत हुए। अन्य धर्मावलम्बियों को दुःख देने, और लोगों को स्वतन्त्रता के साथ बोलने और लिखने की रुकावट भी दूर करने की आज्ञा दी गई और सन् १९०० ई० में पार्लेमेण्ट अर्थात् मुख्य राजसभा स्थापित हुई और इसके द्वारा देश का प्रबन्ध होने लगा। ये सब संशोधन और उन्नति इतनी शीघ्र हुई कि इस परिवर्तन को लोग "भूकम्प" कहते हैं। जैसे बिलायत की राज्यसभा में दादा भाई और भौनगरी ऐसे अन्यधर्मावलम्बी भी सभासद हो सकते हैं, उसी प्रकार जापान की राज्यसभा में ईसाई सभासद भी हैं। सेना का प्रबन्ध योरोपियन ढङ्ग का है। प्रत्येक जापानी को लड़ने जाना आवश्यक है। जो इससे बचना चाहे २७० डालर दे। जो पूर्ण रूप से युद्ध विद्या में निपुण हो जाता है वह "जातीय सभा" का सभासद कहलाता है, जो किसी विशेष कार्य्य पड़ने पर एकत्रित की जाती है।

जापान में बालकों की शिक्षा जब वह ६ वर्ष, ६ मास और ६ दिन का होता है, आरम्भ होती है। प्राचीन प्रणाली की शिक्षा अब उठा दी गई। अब आधुनिक रीति के स्कूल और कालेज खुल गए हैं। शिक्षा में एक बहुमान्य प्रणाली किण्डरगार्टन कहलाती है। इसके द्वारा बालकों को आनन्द बिनोद में सब आवश्यक शिक्षा मिल जाती है। जैसे ५ गेंद लिए और उन पर क्रम से ५ वर्णाक्षर लिख दिए। अब उन गेंदों को भूमि पर लुड़का कर बालक से किसी अक्षर-विशेष का गेंद लाने को कहा। ज्यों ज्यों बालक की अवस्था बढ़ती है इसमें उत्तरोत्तर कठिनाइयां डालते जाते हैं। हमारे मित्र पण्डित महावीरप्रसाद जी ने सरस्वती की गत २ संख्याओं में इसी प्रकार की पद्य रचना की है। जिन पाठ-

शालाओं में इस प्रकार की शिक्षा होती है। उनमें बहुधा स्त्रियां पढ़ाया करती हैं। यह प्रणाली जापान में भी उन्नति पर है। जापान में शिक्षा Compulsory अर्थात आवश्यक है। यदि कोई बालक उचित वयस होने पर पाठशाला में न जाय तो उसके माता पिता दण्ड के भागी होते हैं। स्कूल छोड़ने पर कालेज में पढ़ना पड़ता है। यदि एक बेर जापान के टोकियो युनिवर्सीटी का वार्षिक विवरण (Calendar) पढ़िए तो विदित होगा कि जापान में कालेज के विद्यार्थियों को कैसी मनोहर और उत्तम शिक्षा प्राप्त होती है। कोई विषय नहीं जिसके अध्यापक न हों। एम–ए तक पढ़ने के पीछे यदि इच्छा और योग्यता हो तो किसी एक विषय पर दत्तचित हो अनुसन्धान कीजिए, उसके हेतु वृत्ति (Post Graduate Studies) स्थापित हैं। जापान में भूकम्प बहुत आते हैं और इनसे हानि भी बहुत होती है, इसलिये वहां एक (Seismological observatory) है अर्थात् एक ऐसा मानमन्दिर है कि जिसमें भूकम्प आनेके चिन्ह पूर्वही प्रगट होने लगते हैं। ऐसे मन्दिरों द्वारा भूकम्प के उपद्रव कुछ अंश में कम हो चले हैं। इस विषय पर भी कालेज में शिक्षा होती है। जैसे भारतवर्ष में शिक्षाविभाग के प्रान्तिक उच्च पदाधिकारी डाईरेक्टर होते हैं उस प्रकार जापान का प्रबन्ध नहीं है। वहां एक minister of state for education अर्थात् समस्त जापान के शिक्षा-विभाग का एक उच्च पदाधिकारी है। भारतवर्ष में भी हमारे वर्त्तमान बड़े-लाट लार्ड कर्जन महोदय इसी प्रकार का एक पद स्थापित करने का विचार कर रहे हैं। मिनिस्टर महाशय की गतवर्ष की रिपोर्ट से प्रतीत हुआ है कि आजकल शिक्षा के लिये २० लाख रुपया बचत के कोष Reserved fund में है। ८४६५६०२ रु० (अङ्गरेज़ी सिक्का) अर्थात् ४२३२८०१ येन (जापानी सिक्का) जापान को सरकार शिक्षाकेसहायतार्थ देती है। बहरे गूंगों के स्कूलों में ९,९९५ विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं। कला कौशल की शिक्षा में सरकार १७२०० रु० वार्षिक देती है। इसी प्रकार व्यापार की शिक्षा, कृषीविद्या, नाविक (nautical) विषयक शिक्षा में सरकार रुपया देती रहती है। परन्तु जापानी लोग केवल सरकारी सहायता ही से इस ओर उन्नति नहीं कर रहे हैं। व्यापारियों की कम्पनियां, इञ्जिनियर, डाक्टर लोग अपने नाम पर वृत्ति स्थापित करते हैं। वृद्ध धनाढ्य लोग वसीयतद्वारा लाखों रुपया शिक्षा की उन्नति के निमित्त देते हैं। कतिपय कन्या महा विद्यालय लोग अपने ही चन्दे और प्रबन्ध से चला रहे हैं। सरकार की ओर से एक प्रकार की वृत्ति विदेश में जाकर शिक्षा पाने की ऐसी उत्तम है कि उसका अनुकरण इस देश में बड़ा उपयोगी होगा। यदि कोई बालक अपने कालेज में असाधारण योग्यता दिखलावे तो उसको इस अभिसन्धि पर मासिक कुछ द्रव्य दिया जाता है कि जब वह संसार में स्थिति पाकर द्रव्य उपार्जन करने लगे तो उतना ही मासिक सरकार द्वारा वह किसी दूसरे बालक को शिक्षा लाभ के हेतु देता रहे और जितना धन उसको सरकार की ओर से मिला था, उस पर ब्याज सरकार में जमा करदे। संस्कृत से जापान निवासियों को बड़ा अनुराग है। भाषा तत्वज्ञान(Philology) में संस्कृत पढ़ना आवश्यक रखा है। जापान में जब शिक्षा आरम्भ हुई थी तो विदेशी लोग पढ़ाया करते थे। परन्तु अब फ्रैंच, अङ्गरेजी और जर्मनी भाषा पढ़ानेवाले अध्यापक भी जापानी हैं।

इस समय कई एक हिन्दू बालक जापान में शिक्षा पारहे हैं। बम्बई प्रान्त में मृत रानाडे के प्रबन्ध से हिन्दू बालकों को जापान भेजने के हेतु एक वृत्ति स्थापित हुई थी। पञ्जाब में भी दो एक वृत्तियां ऐसी हैं और कई एक उत्साही पञ्जाबी युवाजन इस समय जापान में शिक्षा पा रहे हैं और भारतवर्ष की वर्त्तमान दशा पर व्याख्यान दे कर उन्होंने जापानियों की सहानुभूति प्राप्त की है और बहुत सा चन्दा जमा करके भारतवर्ष में भेजा है। एक बङ्गाली महाशय जो जापान से शिक्षा पाकर

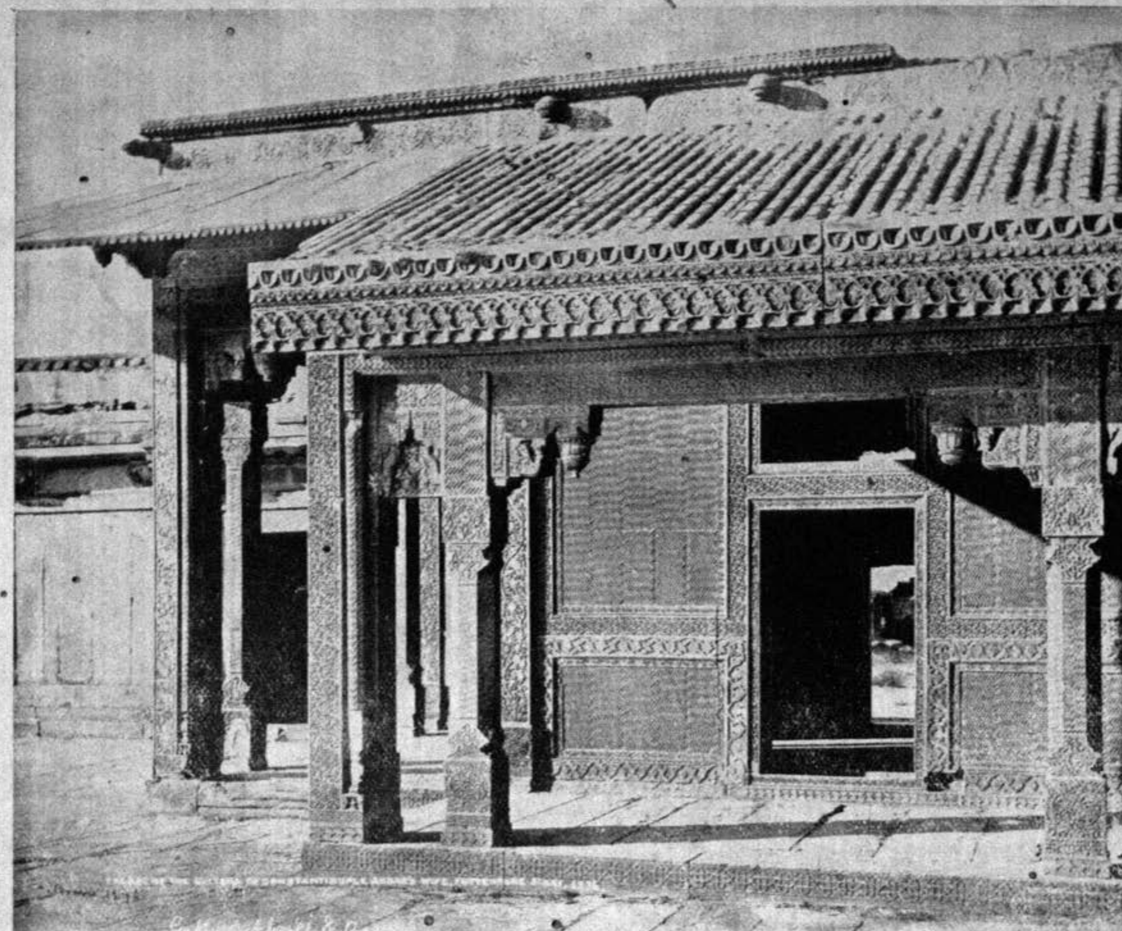

रूमी बेगम का महल—फ़तहपुर सीकरी ।

जापान की सम्राज्ञी

ाए हैं। यहां पेन्सिल का कारख़ाना खोलनेवाले । जापान गवर्नमेंट ने इन्हीं भारतवर्षीय विद्या-र्थियों के अनुरोध से हिन्दू विद्यार्थियों की फ़ीस, ात्रालय का व्यय इत्यादि न्यून कर दिया है। यहां ों कि यदि वे जापानी जहाज़ पर पहिले से पत्र व्यवहार करके जापान जायं तो उनका किराया भी ाधा लगता है।

प्रिय पाठकवृन्द एक बेर जापानी सम्राट् मुत्-्हितो के (चित्र में) पुनः दर्शन कर लो। यही हाशय प्रथम परदे से निकाले गए थे और जितनी न्नति जापान ने की है, वह सब इन्हींके समय में ार इन्हींके कारण हुई है। आजकल इनके वर्त्तमान न्त्री M. Ito. (एम् इटो) इन्हींकी आज्ञा से ारेयोरोप में राजनैतिक अभिप्राय से परिभ्रमण र रहे हैं। हे परमेश्वर! हमारे भारतवर्षीय राजा हाराजाओं के चित्त में भी देशहितैषिता का ादुर्भाव हो और वे जापानी सम्राट के चरित्र से शिक्षालाभ करें।

फ़तहपुर सिक्री

[पूर्व प्रकाशितान्तर]

ऊपर जिस पंजमहल का वर्णन हो चुका है, उसके ठीक उत्तर की ओर एक बड़ा ा चौक है जिसके किनारे पर अस्पताल था। ंजमहल के दक्खिन की ओर मरियम बेगम के हने के महल हैं जो अब "सुनहरे मकान" के नाम ा प्रसिद्ध हैं। ये बीबी मरियम कौन थीं इसका ीक ठीक पता नहीं लगता। कई एक इतिहास-ारों ने लिखा है कि यह पुर्तगाल की रहने-ाली एक क्रुस्तान स्त्री थी; परन्तु अकबर के समय ़ लिखे हुए इतिहासों में इसका वर्णन कहीं भी ़हीं मिलता। आईन अकबरी में जहां अकबर की स्त्रियों की नामावली दी है, वहां किसी क्रुस्तानी ्त्री का वर्णन नहीं है। आईन अकबरी में अकबर ी निम्नलिखित सात स्त्रियों का नाम मिलता है–

(१) सुलताना रुक़िया बेगम (मिर्ज़ा हिंदाल की लड़की)। यह ८४ वर्ष की होकर मरी। इसको कोई सन्तति नहीं हुई थी पर इसने शाहजहां को अपने हाथों पाला और खिलाया था।

(२) सुलताना सलीमा बेगम। यह बाबर की बेटी गुलरुख़ बेगम की लड़की थी। पहिले सलीमा बेगम का बिवाह बैरमख़ां से हुआ था। पर उस-की मृत्यु के पीछे अकबर ने उससे स्वयं बिबाह कर लिया। यह कविता अच्छी करती थी और उसने अपना नाम "मख़फ़ी" रक्खा था। औरङ्-ज़ेब की लड़की ज़ेबुन्निसा ने भी अपना यही नाम रक्खा था।

(३) आमेर के राजा बिहारीमल की कन्या और राजा भगवानदास की बहिन। अकबर ने इसे सांभर में ब्याहा था। इसे मरियमुज़्ज़मानी की उपाधि थी।

(४) अबदुल वासी की सुन्दरी स्त्री।

(५) बीबी दौलत शाह।

(६) अब्दुल ख़ां की कन्या।

(७) मीरां मुबारक शाह की कन्या।

अब यदि मरियमुज़्ज़मानी को ही मरियम मान लेते हैं तो अकबर की और कोई हिन्दू बेगम नहीं थी कि जिसके लिये "जोधाबाई" के नाम से प्रसिद्ध महल बनवाया जाता। टाड अपने राजस्थान में लिखता है कि अकबर का बिवाह जोधपुर के राजा की कन्या से हुआ था और जहांगीर का आमेर के राजा की कन्या से। इस अवस्था में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, परन्तु विशेष प्रमाणों के न मिलने पर आईन अकबरी की ही बात सत्य माननी पड़ेगी। मरियम नाम की अकबर की कोई पत्नी अवश्य थी। पर वह हिन्दू थी या नहीं, यह समझ में नहीं आता। अस्तु, जो कुछ हो, जो स्थान इस समय मरियम के नाम से प्रसिद्ध है, उसमें कई कोठरियां हैं। इन सबमें रंगाई का काम बहुत ही किया हुआ था। हम पहिले लिख

चुके हैं कि अकबर को तसवीरों का बड़ा शौक़ था। अब तक यह बात प्रसिद्ध है कि इस भवन में शाहनामे के चित्र खींचे हुए थे, परन्तु अब वे यहां तक नष्ट भ्रष्ट से हो गए हैं कि उनमें कोई बात बाक़ी नहीं रह गई है। ऊपर के खन में छत और धरने तक रंगसे भरी हुई हैं। बीच बीच में फ़ैज़ी की बनाई हुई शैरें भी लिखी हुई थीं। इन सब बातों पर ध्यान देकर यही निश्चय होता है कि यह महल सलीमा बेगम का था। इसके साथ में बगीचा, स्नानगृह आदि भी बना हुआ है।

इस भवन के ठीक पश्चिम की ओर जोधाबाई का भवन है। ऊपर हम कह चुके हैं कि आईन अकबरी के अनुसार अकबर ने अपना विवाह आमेर के राजघराने से किया था। परन्तु और प्रमाणों के देखने पर यह बात सत्य नहीं जान पड़ती। कर्नल टाड का इतिहास इसके विरुद्ध कहता है। रुक़ेयात आलमगीरी में अकबर की हिन्दू स्त्री का नाम जोधाबाई प्रसिद्ध है जो जोधपुर के राजघराने की थी। दन्तकथाएं भी इसीके पक्ष में कहती हैं। इससे सम्भव यह जान पड़ता है कि अकबर के लड़के सलीम का विवाह आमेर में हुआ हो और उसने स्वयं अपना विवाह जोधपुर में किया हो। इस समय राजपुताने के वंश, जिन्होंने अकबर से नाता जोड़ा था, यह कहते हैं कि उन्होंने राजकन्याओं के डोले नहीं दिए थे, वरन् अकबर को प्रसन्न रखने के लिये और साथही अपने वंश की पवित्रता को रक्षित रखने के लिये, उन्होंने लौंड़ियों को राजकन्याएं कहकर उनके डोले दिए थे। इन बातों में कहां तक सत्यता है यह नहीं कहा जा सकता, परन्तु यदि लौंडिएं दी गई हों तो इसमें आश्चर्य को कोई बात नहीं है। अस्तु, जोधाबाई का राजप्रासाद फ़तहपुर सिक्री के सब भवनों से बड़ा है। इसके समान दूसरा भवन कोई नहीं है। इससे यह सिद्ध होता है कि जोधाबाई का अकबर के यहां सबसे अधिक सम्मान था। अकबर से कुटिलनीतिवाले बादशाह के लिये ऐसा करना बहुत सम्भव था, और विशेषकर उस अवस्था में जब कि उससे एक पुत्र उत्पन्न हो चुका था। इस भवन की बनावट निरी हिन्दुओं की सी है। प्रासाद में आने का मुख्य मार्ग पूर्व की ओर से है। अन्दर जाते ही एक बड़ा सा आंगन मिलता है जिसके बीच में एक छोटा सा कुण्ड और सामने के दालान में किसी देवता का मन्दिर था। उत्तर की ओर, बैठने का घर और हवाई महल के नीचे का भाग है। दक्षिण की ओर, बैठने का घर और स्नानागार आदि हैं। पूर्व और पश्चिम की ओर से ऊपर जाने का मार्ग है। दूसरे भवन की बनावट भी नीचे की भांति है। चारों दिशाओं और कोनों में कोठरियां हैं और सबके बीच में बड़े बड़े दालान हैं। उत्तर की ओर हवाई महल है जो एक बड़े से बरामदे को भांति आगे को निकला हुआ है, और तीन ओर बड़ी बड़ी पत्थर की जालियों से घिरा हुआ है। इस प्रासाद की बनावट सुन्दर सादी और हिन्दू ढङ्ग की है। बाहर से देखने पर महल ठीक राजपुताने के महलों का सा देख पड़ता है। इसकी नक़ल जहांगीर ने आगरे के क़िले में बनवाई थी, जो उसकी हिन्दू बेगम के लिये था और जो अब जहांगीरी महल के नाम से प्रसिद्ध है।

जोधाबाई के महलों के ठीक पश्चिम अस्तबल थे और उनके ठीक उत्तर राजा बीरबल के रहने का स्थान था। यह प्रसिद्ध है कि यह बीरबल की बेटी का महल है। फ़तहपुर सिक्री में जितने स्थान अकबर के बनवाए हुए हैं, उन सभों में जैसा कि हम आगे लिख चुके हैं, राजा बीरबल और सुलताना बेगम के भवनों की बनावट सबसे उत्तम और मनोहर है। भारतवर्ष भर में ऐसा कोई हिन्दू न होगा जो इनके नाम से परिचित न हो। ये कालपी के रहनेवाले, जाति के ब्राह्मण थे और पूर्व नाम इनका महेशदास था। इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी और यही कारण हुआ कि

बीरबल की बेटी का महल—फ़तहपुर सीकरी

अकबर ने इनका इतना अधिक सम्मान किया। सब हिन्दू पारिषदों में अकबर के जितने बीरबल प्यारे थे, इतना दूसरा कोई न था। जिस समय यूसुफ़ज़यी लोगों ने बिजौर और सवाद में विद्रोह खड़ा किया तो सेनानायक के लिये बीरबल और अबुलफ़ज़ल दोनो निर्वाचित हुए। अन्तमें बीरबल चुने गए, पर अकबर को यह बात रुचिकर न होने पर भी माननी पड़ी। दुर्भाग्यवश इस लड़ाई में वे आठ हज़ार सिपाहियों के साथ मारे गए। इनकी मृत्यु का समाचार जिस समय आगरे पहुंचा तो किसीका इतना साहस न हुआ कि उसे उस समय अकबर तक पहुंचावे। इन्हीं दिनो में हिन्दी के प्रसिद्ध कवि केशोराय ओड़छे के दर्बार की ओर से प्रवीणराय पातुरी के साथ अकबर के यहां गए हुए थे। सब लोगों ने इनकी बुद्धि की कुशाग्रता पहिले ही से जान ली थी, अतएव सभों ने इनसे प्रार्थना की कि महाराज! इस सम्वाद को आपही अकबर तक पहुंचाइए। इन्होंने भी इस बात का बीड़ा उठा लिया। जिस समय ये दर्बार में पहुंचे तो चारो ओर दर्बारी सब निज निज स्थान पर पंक्ति बांधे बैठे थे। सब सोच सागर में निमग्न थे, पर कोई बोलने का साहस तक भी न करता था। अबुलफ़ज़ल, जिससे पहिले ही केशवदास जी से बातें हो चुकी थीं, बड़ी व्यग्रता से इस बात की प्रतीक्षा करने लगा कि देखें कि यह किस उपाय का आश्रय लेते हैं। इतने में इन्होंने पहुंच कर अकबर को अशीर्वाद दिया और यह दोहा पढ़ा—

भूपति सब याचक भए, रह्यो न कोऊ लेन।
इन्द्रहु को इच्छा भई, गयो बीरबर देन॥

अकबर स्वयं हिन्दी का कवि था। समझ गया कि प्रियपात्र स्नेहभाजन बीरबल अब इस संसार में नहीं है,-मूर्छित हो गया और पीछे कई दिनों तक उसने इनका बड़ा शोक मनाया। इन्हीं बीरबल के लिये उसने ठीक जोधाबाई के प्रासाद के निकट ही भवन बनवाया जो सन् १५७१ ई० में बनकर तैय्यार हुआ था। इसमें नीचे के खन में चार बड़ी बड़ी कोठरियां हैं और ऊपर के खन में दो कोठरियां और दो बड़ी बड़ी छतें सुन्दर जाली से घिरी हुई थीं। पत्थर का काम ऐसी सुन्दरता से किया गया है कि वह देखतेही बन आता है। हमें दुःख है कि स्थानाभाव और समयाभाव के कारण न हम इस भवन का पूरा पूरा वर्णन कर सकते हैं और न उसकी कारीगरी का नमूना ही उपस्थित कर सकते हैं। अस्तु, हमारी प्रार्थना आगरे जाने और रहनेवालों से है कि वे इस स्थान को देख स्वयं उसकी सुन्दरता का अनुभव कर लें। इस भवन के वर्णन के साथ फ़तहपुर सिक्री के राजप्रासादों का वर्णन समाप्त होता है। अब यहां पर केवल एक स्थान वर्णन करने योग्य रह गया है और वह शेख़ सलीम चिश्ती की मज़ार है। यह राजप्रासादों के उत्तर पश्चिम कुछ दूरी पर है।

लाल पत्थर की बड़ी ऊंची ऊंची दीवारों से घिरी हुई एक अच्छी लम्बी चौड़ी भूमि है। इसमें चिश्ती साहब का समाधिस्थान है। फ़तेहपुर सिक्री में इस स्थान को छोड़कर और कोई स्थान संगमरमर का बना हुआ नहीं है। और संगमरमर का काम भी ऐसा बना है जो दूसरी जगह जल्दी देखने में नहीं आता। संगमरमर की जाली तो ऐसी सुन्दर बनी हुई है कि देखकर मन मोहित हो जाता है। परन्तु इन जालियों की शोभा एक प्रकार से मिट्टी में मिल रही है। जितने लोग वहां ज़ियारत को जाते हैं, और विशेष कर पुत्र की कामना करने वाली स्त्रियां, उन जालियों में एक चिथड़ा बांध आती हैं जिसमें चिश्ती साहब उनकी प्रार्थना भूल न जांय। जब उनकी मनौती पूरी हो जाती है तो वे उसे खोल आती हैं। इन चिथड़ों से जालियां सदा ढकी रहती हैं और ऐसी भद्दी मालूम पड़ती हैं कि उनकी ओर जो देखने को नहीं चाहता। जिस समय हम इस स्थान को देखने गए थे तो लाखों ही मनुष्यों के चिथड़े

उनमें बँधे हुए थे, जिससे केवल यही सिद्ध होता है कि लाखों ही मनुष्यों की प्रार्थना पूरी न हुई होगी। जो कुछ हो, परन्तु उनसे जालियों की सुन्दरता पूरी पूरी नष्ट हो जाती है। इस स्थान के एक ओर एक बड़ा सा लकड़ी का फाटक है जिसपर घोड़ों की सैकड़ों नालें लगी हुई हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि यहां नाल लगा देने से घोड़े की बिमारी अच्छी होती है।

जहां चिश्ती महाशय की समाधि है, वह स्थान संगमरमर का बना है और उसपर सोनहला और रङ्गीला काम बड़ा सुन्दर बना हुआ है। हमें दुःख है कि इस चित्रकारी का नमूना हम अपने पाठकों को नहीं दिखा सकते। इसी स्थान में एक मसजिद भी है; तथा पासही शेख़ साहब के रहने का स्थान और अनेक मसजिदें हैं। अब तक वह स्थान दिखाया जाता है जहां सलीम जोधाबाई के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

शेख़ साहब के मज़ार से सटे हुए अबुल फज़ल और फ़ैज़ी के मकान हैं। इनमें कोई विशेषता नहीं है। एक में अब अङ्गरेज़ी स्कूल और दूसरे में हिन्दी का स्कूल होता है।

इस वर्णन के साथ हमारा यह लेख समाप्त होता है। छोटे छोटे स्थानों का वर्णन हमने जान बूझ कर छोड़ दिया है। इस लेख के लिखने से हमारा उद्देश्य यही था कि हमारे पाठकों को इस नगर के देखने का उत्साह हो तो जो महाशय वहां जांयगे वे सब स्थानों को स्वयं देखलेगें।

त्रिलोचन मिश्र वा मियां तानसेन

मियां तानसेन का जीवनचरित्र लिखने के पूर्व थोड़ी सी भूमिका लिखनी आवश्यक है; क्योंकि उनकी जीवनी किम्वदन्ती, दन्तकथा, जनश्रुति और चलित गाथाओं से जितनी संग्रह की गई है, वह अलौकिक घटनाओं से परिपूर्ण है। आजकल जैसा समय वर्तमान है, इसमें क्या कोई अलौकिक घटनाओं पर विश्वास करेगा? कोई विश्वास करे वा नहीं, परन्तु "अलौकिक" का अर्थ क्या है, इसका विचार करना प्रथम उचित है। जो कुछ मनुष्य-क्षमता से अतीत है वही अलौकिक है। यहां पर मनुष्य क्षमता के कहने से मनुष्य की साधारण क्षमता समझनी चाहिए। मनुष्य-विशेष को विशेष क्षमता है। इसे बहुतेरे अस्वीकार नहीं करेंगे। परन्तु वही विशेष क्षमता सर्वसाधारण के साध्य न हो तो जिन लोगों ने उस क्षमता को प्रत्यक्ष किया है, वे लोग उसे "अलौकिक क्षमता" की संज्ञा बिना दिए और क्या कर सकते हैं। वास्तव में क्षमता वा शक्ति की लौकिकता वा अलौकिकता नहीं है। जिसे लोग अनायास समझ सकते हैं उसे ही लौकिक कहते हैं, और जिसे लोग सहज में हृदयंगम न कर सकें उसे अलौकिक वा दैविक कहते हैं। जिन लोगों को प्राचीन-काल के साथ वर्तमान काल की तुलना करने की क्षमता या अभ्यास है वे लोग यह विशेष रूप से जानते हैं कि अनेकानेक दैवी शक्ति अधुना लौकिक शक्ति में विख्यात हो गई हैं, और पूर्व में जो लौकिक शक्ति के नाम से परिगणित होती थीं, वह हमलोगों की बुद्धि के अगम्यवशतः दैवी शक्ति में परिणत हो गई हैं। यह शक्ति ही बड़ी दुर्बोध्य है, सुतरां कठोर साधनासापेक्ष है। हम लोगों के शरीर के अभ्यन्तरही में जो जो शक्ति सुसुप्तावस्था में वर्तमान है, उन उन शक्तियों की उद्दीपना द्वारा अनेक अलोकसामान्य घटना संसाधित हो सकती हैं। यहां पर "जो जो" शब्द के कहने से शक्ति का बहुत्व स्वीकार नहीं किया गया है, उसके कार्य्य का बहुत्व स्वीकार किया गया है। तानसेन के विषय में वर्तमान प्रबन्ध में हम लोग दो बातों की मीमांसा में व्याप्त हैं। वे दो बातें ये हैं—प्रथम यह कि दीपक राग से गायक का देह तेजोमय होता है वा नहीं? दूसरे यह कि मल्हारी रागिणी से वर्षा हो सकती है या नहीं। परन्तु इन दोनों

वार्ता की मीमांसा में प्रवृत्त होना हम लोगों के लिये असाध्य है। इस प्रबन्ध का संकलयिता हिन्दुस्थानी है, पाठकगण चाहे सब न हों, परन्तु अधिकांश ही हिन्दुस्थानी वा हिन्दीभाषी हैं। हम लोगों में से अनेक मनुष्य "ण" और "न", वर्गीय "ब" और अन्तस्थ्य "व"; तथा "श", "ष", "स" आदि वर्णों के उच्चारण आदिक अभी तक समझने में असमर्थ हैं। सुतरां "षड्ज", "ऋषभ", "गन्धार", "मध्यम", "पंचम", "धैवत" और "निषाद" आदि सप्तस्वर पर्याययुक्त रुप से साधन पूर्वक, किसी राग रागिनी में प्रवृत्त होना हम लोगों के लिये विड़म्बना मात्र है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि प्रत्येक रागिनी शक्तिमई है। यथास्थान से यथाविधि उसके आलाप न होने से उस शक्ति का उद्दीपन नहीं होता। शक्ति का उद्दीपन न होने से शक्ति के कार्य्य भी जान नहीं पड़ते। योगी ऋषीलोग योग की सहायता से ही राग रागिनियों के आलाप का अभ्यास किया करते थे। सुतरां उनकी शक्ति का भी पूर्ण उद्दीपन होता था। आज कल गाना बजाना प्रसन्नतालाभ, "शौक़" या "दिल्लगी" का काम समझा जाता है। शौकीन लोग साधना के मार्ग से बहुत दूरी पर अवस्थित हैं। सुतरां इस प्रकार के लोगों पर निर्भर करने के कारण आर्य्य संगीतशास्त्र की दुर्गति जहां तक होनी संभव है वहां तक हुई है। दीपक राग या मल्लारी रागिनी में क्या शक्ति है? उसे प्रकृत साधक गायक के मुख से सुन कर प्रत्यक्ष करने की चेष्टा से संप्रति हमलोगों को निरस्त होना पड़ा। हम लोगों की घोर चेष्टा है ऐतिहासिक प्रमाण। तानसेन अकबर बादशाह के प्रधान गायक थे। उस समय के इतिहास में तान गीतशक्ति का कोई उल्लेख है वा नहीं इसका अनुसन्धान किया जा सकता है। परन्तु इस के बीच में भी एक विषय का बड़ा सन्देह उपस्थित है। बादशाह की अमलदारी में अनेक सम्भ्रान्त मुसलमान नाच गाना देखने सुनने के रसिया वा शौक़ीन थे, मद्यपान में भी कसर नहीं करते थे। परन्तु इन सब बातों के लिखने में उनकी बड़ी आपत्ति थी, क्योंकि इसे धर्मविगर्हित वा हराम समझते थे। दीपक रागिनी द्वारा जो तेज उद्दीप्त होता है, इसे यदि उन लोगों ने प्रत्यक्ष गोचर किया भी, तौभी यही समझा होगा कि यह सब प्रेतक्रिया वा "शैतानी हरकत" हैं; सुतरां उल्लेख-योग्य नहीं। जो हो, तानसेन के सम्बन्ध में मुसलमान इतिहास से जो कुछ प्राप्त हुआ है, वह अबकी बात नहीं है।

त्रिलोचन मिश्र के पितामह अर्थात् दादा ग्वालियर के अधिपति महाराज रामनिरञ्जन के प्रधान गायक थे। त्रिलोचन दादा के साथ राज सभा में आते जाते थे। इनकी बाल्यावस्था ही में यह प्रगट हो गया था कि ये सङ्गीतविद्या में विशेष सुख्याति संचय करेंगे। महाराज रामनिरञ्जन ने उक्त युवक की सङ्गीत-पारदर्शिता से परम प्रसन्न होकर इनको तानसेन की उपाधि से विभूषित किया। इससे त्रिलोचन मिश्र को लोग तानसेन के नाम से पुकारने लग गए। विस्तार अर्थ बोधक "तन" धातु से "तान" पद साधित होता है। अनुलोम-विलोम गति से गमक-मूर्छनादि द्वारा किसी रागादि को सम्यक् प्रकार से विस्तार करने का नाम "तान" हुआ और इसमें जो प्रधान वही "तानसेन" हुआ। सुतरां अल्प अवस्था ही में त्रिलोचन मिश्र को तानसेन की उपाधि का प्राप्त होना कुछ कम गौरव का विषय नहीं है। तानसेन ने पहिले वृन्दावन में हरिदास स्वामी जो से गायन-विद्या सीखी, इसके अनन्तर दिल्ली में गन्धर्वजातीय "बैजू बावरे" से सङ्गीत शिक्षा लाभ की और राग रागिनी के वर्तमान करने की शक्ति सञ्चय की। बादशाहशिरोमणि अकबर शाह ने इस प्रतिभाशाली गायक का परिचय पाकर अपनी सभा या दर्बार में पद प्रदान किया। तानसेन ने अकबर के दर्बार में जाने के पहिले ही ग्वालियर में हिन्दू शास्त्रानुसार अपना बिवाह किया था। इस बिवाह से एक कन्या उत्पन्न हुई

थी। कन्या भी प्रधान गायिका हुई। ये मल्लारी राग में सिद्ध हुई। तानसेन के दिल्ली में अकबर शाह के दर्बार में नियुक्त होने पर भी इनकी हिन्दू गृहस्थी ग्वालियर में ही रही। ऐसा प्रवाद है कि अकबर शाह की एक कन्या ने तानसेन की राग से मोहित होकर इनको पतित्व में वरण किया। यवनी या मुसलमानी से बिवाह करने ही के कारण त्रिलोचन मिश्र जी ब्राह्मणत्व से पतित होकर "मियां तानसेन" के नाम से साधारण में परिचित हो गए। इतिहास में अकबर की तीन कन्याओं का उल्लेख देख पड़ता है। यथा शाहज़ादी ख़ानम, शकुन्निसा, और आराम बानू। इन तीनों में से किसी एक ने ही मिश्र जी को आत्मसमर्पण किया था, ऐसा तो जान नहीं पड़ता। इनके अतिरिक्त गोली, ख़वास, बांदी, लौंडी और हिन्दू रजवाड़ा द्वारा प्रदत्त "डोला" वा दासी के गर्भ-जात कन्या का मिश्र जी के साथ बिवाह का होना असम्भव भी नहीं है, क्योंकि ऊर्द्धोक्त प्रकार नामधारिणी बहुत सी उत्पति अकबर की थीं। जिन तीनों का नाम इतिहास में पाया जाता है, कदाचित् ये बादशाह की वास्तविक बिवाहिता स्त्रियों वा बेगमों की गर्भ-जात होंगी; क्योंकि दासीपुत्र या पुत्री वा सन्तान का नामोल्लेख करने का नियम इतिहास में नहीं है। "ख़ास बेगमों" के अतिरिक्त ऊपर लिखी स्त्रियों के गर्भ से उत्पन्न सन्तानों का बखान मुसलमान लेखकों द्वारा लिखित इतिहासों में होना सम्भव नहीं है। इस विषय के प्रमाण संग्रह के विषय में लोक-प्रवाद पर ही निर्भर करना पड़ता है। बौद्ध अत्याचार वा मुसलमान-शासन-विभ्राट के प्रताप से हिन्दू-इतिहास लुप्त-प्राय हो गया है। बाध्य होकर मुसलमानी इतिहास वा जनप्रवाद पर निर्भर करना पड़ता है। सुतरां किसीके जीवनचरित्र संग्रह करने में भी बड़ी कठिनाइयां भोगनी पड़ती हैं। जन्म, विवाह, सन्तति, मृत्यु तक लिखने ही से सब बखेड़ा पार हो जाता है। हमलोगों ने तानसेन के विषय में भी यही सब लिखा है। अब मृत्युकथा लिखने ही से समाप्ति हो जावेगी। मूल बात यह है कि योरोप में जिन सब उपादानों से जीवनी सङ्कलित होती है, वर्तमानकाल में हमारे देश में उन सब उपादानों का एक प्रकार से सम्पूर्ण अभाव है। इससे जनश्रुति को अवलम्बन कर ही लिखने में रत होना पड़ा है। तानसेन की मृत्यु-घटना जिस प्रकार सुनी है उसी प्रकार लिखते हैं।

पञ्जाब में एक वृद्ध ब्राह्मण सङ्गीतविद्या में विशेष पारदर्शी थे। उनके पौत्र और पौत्री इनसे शिक्षा पाकर सुगायक और सुगायिका हुए। वृद्ध ब्राह्मण ने पौत्र को सङ्गीतशास्त्र के विषय में प्रतिभा-सम्पन्न देख और राजसभा को ही उसके लिये प्रकृत कार्य्यस्थल विचार, उसे दिल्लीश्वर अकबर शाह के समीप प्रेरण कर दिया। उक्त युवक बादशाह की राजधानी में आकर यह सोचने लगा कि किस प्रकार से बादशाह के दर्बार में पहुंचे, और कौन बादशाह से परिचय करवा दे। चिन्ता करते और बिचारते उन्हें तानसेन का स्मरण हुआ। वे चट मियां तानसेन के पास गए और अपना अभिप्राय कहकर प्रगट किया। तानसेन पञ्जाबी युवक का सङ्गीत में अधिकार देखकर केवल चमत्कृत ही नहीं हुए, वरन् ईर्षा, द्वेष और डाह से दग्ध भी होगए। इन्होंने बिचारा कि इस युवक के दर्बार में उपस्थित होकर गाने से मेरी प्रतिपत्ति वा प्रतिष्ठा घट जायेगी। वास्तव में तानसेन ने उस पञ्जाबी युवक को सङ्गीतविद्या मे अपना समकक्ष वरन् श्रेष्ठ समझा। सुतरां सहायता करनी तो दूर रही, वरन् मियां जी इस चिन्तन करने में प्रवृत्त हो गए कि किस प्रकार से इसका प्राण-बध-साधन करें और इसीका उपाय अन्वेषण करने लगे। तानसेन पञ्जाबी युवक की प्रकाश भाव से तो उत्तम अभ्यर्थना और आतिथ्य सत्कार करने लगे और यह स्वीकार कर युवक को आश्वासन दिया कि बादशाह के दर्बार में लेजाकर भली भांति परिचय और प्रवेश करा

दूंगा। पञ्जाबी युवक ने भोजनादि कर पथश्रांति दूर करने के लिये शयन किया। जब ये गम्भीर निद्रा में अभिभूत हुए, ऐसे समय में तानसेन मियां ने उनकी शय्या के समीप जाकर तीक्ष्णधार कटार से उनके शरीर के टुकड़े टुकड़े काट कर उन्हें यमलोक पहुंचा दिया और घर के पास एक गड्हा खोदकर दबा दिया। यह पहिले ही कहा जा चुका है कि पञ्जाबी युवक की सहोदरा भी पितामह के घर में थी। भाई बहिन में आपस में बड़ाही स्नेह तथा प्रेम था। जब युवक घर से चलती समय प्रतिज्ञा कर आया था, कि जब तक कोई विघ्न न होगा मैं बराबर प्रति सप्ताह निश्चय पत्र भेजा करूंगा। युवक ने दिल्ली पहुंचकर तानसेन के साथ परिचय आदि के विषय का पत्र तो भग्नि को लिखा; इसके अनन्तर जिस प्रकार प्रतिश्रुत हो आए थे उस प्रकार कुशल-समाचार पूर्ण पत्र दूसरे सप्ताह में न पहुंचा, क्योंकि दूसरे सप्ताह के आने के पूर्व ही युवक इस लोक से चल बसा था। जब बहुत दिन तक भाई का पत्र बहिन को नहीं पहुंचा, तब बड़ी चिन्ता हुई। इन्होंने सोचा कि यदि भाई स्वस्थ और जीवित होते तो अवश्य चिट्ठी लिखते। अन्त को भग्नि ने पितामह की अनुमति ले दिल्ली की यात्रा की। अकबर शाह के दर्बार में स्त्रियों को भी प्रवेशाधिकार था। सुतरां उक्त युवती दर्बार में उपस्थित हो गई। और अकबर से अपने सहोदर का हाल पुछा। बादशाह वा उनके दर्बार का कोई भी कर्म्मचारी युवक के विषय में कुछ नहीं जानता था। इसलिये कोई उन्हें कुछ भी न बता सका। पञ्जाबी ब्राह्मण-कन्या एक तो युवती, दूसरे परमा सुन्दरी, नव-यौवन-सम्पन्ना, उस पर सङ्गीत में भी सुनिपुणा, सुतरां बादशाह को इनपर सहानुभूति हुई। युवती ने दिल्ली पहुंचने और मियां तानसेन के घर ठहरने आदि विषयक पत्र, जोकि भाई ने भेजे थे, बादशाह को दिखलाए। उस समय तानसेन दर्बार में वर्तमान नहीं थे। अकबर शाह ने तानसेन को बुलवा भेजा और पंजाबी युवक का अन्तिम पत्र दिखलाकर पूछ जांच की। तानसेन ने युवक का आना स्वीकार कर कहा कि "पत्र में सब ठीक ही लिखा है, परन्तु पंजाबी युवक भोजन के अनन्तर बाहर जा कर नहीं लौटा"। इस पर युवती को संतोष न हुआ; वह बारम्बार यही कहने लगी कि "मेरा भाई सुगायक कलावंत (कलामत) था, तानसेन ने विद्वेषवश, उसको मार डाला है, इसमें सन्देह नहीं"। इन्होंने बादशाह से यह प्रार्थना की कि "यदि आप मेरे साथ तानसेन के घर तक कृपाकर पधारें तो सब रहस्य खुल जायगा। तानसेन ने अपने गृह के चाहे जिस भाग में मेरे भ्राता के शव को गाड़ रक्खा हो, मेरी संगीतशक्ति के प्रभाव से वह मृत शरीर मेरे समीप आ जायगा"। अकबर शाह भी कौतूहलपरवश हो युवती और तानसेन को साथ लेकर उनके घर पहुंचे। युवती ने गाना आरम्भ किया। ऐसा प्रवाद है कि युवती के संगीत-प्रभाव से युवककी समाधि (क़बर) फटकर सात टुकड़े हो गई और क़बर के बीच से मृत देहावशिष्ट अस्थि कंकाल युवती के समक्ष उपस्थित हुआ। ऐसी दशा में अकबर को कोई सन्देह नहीं रहा और यह ज्ञात हो गया कि तानसेन ही ने अत्याचार व हत्या भी की है। बादशाह ने क्रुद्ध होकर तानसेन का बड़ा अपमान किया और यथेष्ट भर्त्सना की। इधर रोरुद्यमाना युवती को विविध प्रकार सान्त्वना देकर बिदा किया। युवती ने गृह में प्रत्यावर्तन कर आनुपूर्विक सब बातें वृद्ध पितामह को सुनाईं। पौत्र के शोक से वृद्ध ने अभिभूत होकर, तानसेन को नृशंस हत्या का समुचित प्रतिफल प्रदान करने के मानस से अकबर की राजधानी की ओर यात्रा की और वहां पहुंचकर किसी सभासद की सहायता से अकबर के समीप उपस्थित हुए। वृद्ध ने बादशाह से प्रार्थना की कि "आपने दीपक रांग से कोई गीत सुना है कि नहीं मैं नहीं जानता, परन्तु मैंने दीपक राग साधा है, इस राग में भी आपको दो

एक गीत सुनाऊंगा, यही मेरी अभिलाषा है। बादशाह ने अनुमति दी और वृद्ध गाने लगे। संगीत आरम्भ होने के पूर्व ही वृद्ध के अनुरोध से सभा गृह के दीपक आदि बुझा दिए गए थे। वृद्ध को नायिका सिद्ध थी। गाते गाते नायिका की सहायता से सभा के दीपक आदि अकस्मात् सहसा बल उठे। इस पर बादशाह और सब सभासद लोग गायक की प्रशंसा करने लगे। केवल तानसेन ही ने समझ लिया कि दीपक नहीं कान्हड़ा राग वृद्ध ने गाया है। सुतरां इन्होंने बादशाह से प्रार्थना की कि "यह गीत कान्हड़ा राग में गाया गया है, दीपक में नहीं"। वृद्धने भी इस बात को स्वीकार किया। अकबर शाहने कहा—"मियां तानसेन, आपके गाने से कभी दीपक प्रज्वलित होते नहीं देखा, यदि आपने दीपक राग साधा हो तो आपही दीपक राग में एक गीत सुना दीजिए"। बादशाह का आदेश अलङ्घ्य हुआ। तानसेन ने पहले तो टालने की चेष्टा की, परन्तु कुछ न चली, अन्त को इन्होंने बादशाह से निवेदन किया कि मैं दीपक राग में गा सकता हूं, परन्तु इसमें मेरा प्राणान्त हो जावेगा; इस गीत की शक्ति से हमारे शरीर में जो तेज उत्पन्न होगा, उससे मैं मर जाऊंगा। जब मैं यमुना के जल में धस कर दीपक अलापता था, तब जल तक गर्म हो जाता था। बादशाह यदि अनुग्रह कर समय दें तो मैं ग्वालियर से अपनी लड़की को बुलालूं। वह मल्हारी राग आलाप करेगी और मैं दीपकराग आलाप करूंगा तो मेरे प्राण रक्षा की सम्भावना है"। तानसेन के अनुनय विनय करने पर भी बादशाह ने एक न मानी। अगत्या बाध्य होकर तानसेन को गाना आरम्भ करना पड़ा। सभास्थ सभी गीत से मुग्ध होगए। बादशाह बारम्बार वाहवाही देकर तानसेन को प्रोत्साहित कर 'बढ़ावा देने लगे। सब कोई एकाग्र वा तद्गत-चित्त से सुनने लगे। दीपक के तेज से तानसेन के शरीर में प्राण-वायु क्षीण प्रवाहित होने लगी, अन्त को प्राणान्त होगया। परन्तु बादशाह को यह ज्ञात न हुआ कि तानसेन परलोक पधार गए हैं। गीतबन्द होने के कारण बादशाह तानसेन पर विरक्ति प्रकाश करने लगे। शीघ्र ही भ्रममिट गया, देखा कि तानसेन की भी तान पूरी हो गई। तब पञ्जाबी वृद्ध गायक की खोज होने लगी, कुछ अनुसन्धान न मिला। वृद्ध इससे पूर्व ही निज मनोरथ सिद्ध समझ कर दर्बार से चम्पत होचुका था। तब ग्वालियर में इनकी कन्या को समाचार गया। तानसेन की कन्या आई और मल्लारी रागिनी में गाने लगी। ऐसा प्रबाद है कि क्रमागत एक सप्ताह तक वर्षा दिल्ली में होती रही। राजमार्ग, गली, कूचे, जलमग्न हो गए, परन्तु तानसेन के प्राण न लौटे। अन्त में ग्वालियर में ले जाकर तानसेन को क़बर दी गई। आज तक वह क़बर वहां वर्तमान है। प्रति वर्ष उस स्थान पर मेला लगता है और देशी, परदेशी गायकगण इकट्ठे होकर गाते बजाते और तानसेन पर सम्मान प्रदर्शित करते हैं तथा कबर की मिट्टी भी खाते हैं। गवैयों का ऐसा दृढ़ विश्वास है कि तानसेन के साथ ही दीपकराग का भी लोप हो गया है। मियां तानसेन के रचे गीतों में हिन्दूत्व को पूर्ण प्रतिभा प्रतिबिंबित है जो कि साधारण पर विदित ही है। अतएव यहां पर इस प्रबन्ध की समाप्ति करते हैं।

2138